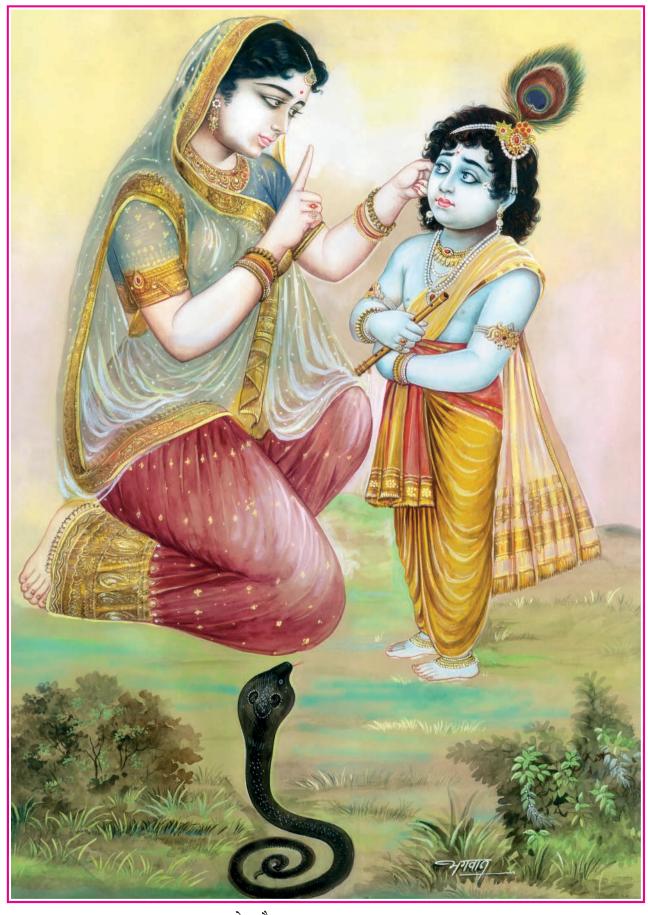
# 900







यशोदा मैयाका वात्सल्य-भरा शासन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९० गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई० पूर्ण संख्या १०७४

### मैयाकी सीख

भूषन-बसन सजाय सिंबिध मैया मुरली कर दीनी। कमलनैन ने करवी कलेवा, चलिबै की मन कीनी।।

मैया कह्यौ—'लाल मेरे तुम बहुत दूर जिन जइयौ। साँढ साँप बीछिनि तें लाला दूर डरत ही रहियौ'॥

सूधे-से हामी भर, तुरतिह आँगन-बाहर भागे। कारौ नाग देखि, तहँ, तातें करन अचगरी लागे॥

×

×

**₩** 

**₩** 

×

×

पाछे-पाछे आय रही ही मैया नेह भरानी। बिषधर भुजँग निकट लाला कों देखत ही डरपानी॥
दौरि हटिक धीरे तें नेह भरे मन लगी डरावन। कोमल अँगुरिन पकिर कान दिहनौ लागी धमकावन॥
अचरज भरे डरे मन लाला अपराधी-से ठाढ़े। मैया च्यौं निरदोष मोय डरपावित सोचत गाढ़े॥
लोकपाल काँपत जाके डर अखिल भुवनके स्वामी। डरपत लीला करत स्वयं वे भक्त-प्रेम-अनुगामी॥
वत्सलता परिपूरित मैया-हिय कैसो सुचि पावन। देखत फन उठाय फिन निज लीला सुलिलत मनभावन॥

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मई २०१६ ई० विषय-सूची		
१- मैयाकी सीख ३	११- माँ [कविता] (श्रीरंधीरकुमारजी) २०	
२– कल्याण ५	१२– मानवताकी सफल योजना	
३- देवर्षि नारद [आवरणचित्र-परिचय] ६	(स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती) २१	
४- भगवन्नाम-महिमा	१३- जीवनका सच्चा लाभ ( श्रीबरजोरसिंहजी) २४	
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७	१४- खतरनाक चोर	
५- कर्तव्यपालन भी आवश्यक	(गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज) २५	
(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ९	१५- चौधरीजीका मायरा [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
६- भजन कैसे करें?	[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]२६	
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) १२ ७- नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता	१६- मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है ( श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) २८	
७- नम्रताक व्यवहारस परामव नहा होता [नीतिकथा]१५	(श्रामाकमयन्दर्जा प्रजापात) २८ १७– द्वार खोलो![कहानी] (श्री 'चक्र') ३२	
८- 'गावो विश्वस्य मातरः' ( अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर	१८- धर्मका स्वरूप (श्रीअमृतलालजी गुप्ता) ३७	
एवं श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य	१९- साधक कमलाकान्त (श्रीरामलालजी)	
स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज) १६	२०- साधनोपयोगी पत्र४३	
९- जो धेनु आयी न होती [कविता]	२१- व्रतोत्सव-पर्व [आषाढ्मासके व्रत-पर्व]४५	
(श्रीपारसनाथजी पाण्डेय)१७	२२- कृपानुभूति४६	
९०- साधकोंके प्रति—	२३- पढ़ो, समझो और करो ४७	
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १८	२४- मनन करने योग्य५०	
चित्र-	-सूची	
१- देवर्षि नारद (एं	गीन)आवरण-पृष्ठ	
२- यशोदा मैयाका वात्सल्य-भरा शासन (	" ) मुख-पृष्ठ	
३- बालिपर भगवत्कृपा(इर	करंगा)१९	
४- आदिकवि महर्षि वाल्मीकि(	" )	
	। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥	
	। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ ( पंचवर्षीय शुल्क )	
313/4 (700	। गौरीपति जय रमापते।। अजिल्द ₹१०००	
सजिल्द ₹२२० विदेशमें Air Mail वार्षिक US		
· ,	\$ 225 (₹13500) { Charges 6\$ Extra	
	द्वेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका	
	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	
•	सम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़	
	िलये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित	
	alyan@gitapress.org © (0551) 2334721	
	ग्', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। ् <sub>.</sub>	
	Online Magazine Subscription option को click करें	
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kaly	an-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।	

संख्या ५ ] कल्याण कल्याण

साथ जायँगे और जगत्के प्राणियोंमें फैलकर बदलेमें याद रखो—श्रीभगवान् परम आनन्द और परम

शान्तिके समुद्र हैं। उन श्रीभगवान्के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जितना ही बढ़ता जायगा, उतना ही आनन्द

और शान्ति भी तुम्हारे अन्दर बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ भी जाओगे, आनन्द और शान्तिको साथ लेते

जाओगे और तुम्हारे आनन्द तथा शान्तिसे जगत्के

प्राणियोंको भी यथायोग्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति

होगी। साथ-ही-साथ तुम भी क्रमश: अधिक-से-अधिक आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति करते जाओगे;

क्योंकि तुम्हारा हृदय हर समय, हर स्थानमें उनका आकर्षण करता रहेगा।

याद रखो-तुम्हारे हृदयका द्वार जिसके लिये खुला होता है, तुम्हें वही वस्तु मिलती है और जो वस्तु

अन्दर होती है, उसीको अधिक पानेके लिये हृदयका

द्वार भी खुला रहता है। तुम यदि आनन्द और शान्ति चाहते हो तो आनन्द और शान्तिके सागर भगवानुसे

सम्बन्ध जोड़ो, तुम्हारे हृदयमें आनन्द और शान्ति आयेगी और ज्यों-ज्यों वह जगत्में फैलेगी, त्यों-ही-

त्यों तुम्हारे अन्दर भी बढती जायगी। तुम यदि भगवानुके सम्बन्धको भूलकर शोक और अशान्तिसे भरे विषय-वैभवसे सम्बन्ध जोड़ोगे तो तुम्हें आनन्द और

शान्तिके बदले शोक और अशान्तिकी प्राप्ति होगी। फिर ज्यों-ज्यों तुम्हारा विषय-सम्बन्ध बढ़ता जायगा,

तुम्हारे हृदयका दरवाजा आनन्द और शान्तिके लिये बन्द हो जायगा और तुम शोक तथा अशान्तिसे सन

तुम्हारे शोक और अशान्तिको और भी बढ़ा देंगे।

जाओगे। फिर जगत्की ऊँची-से-ऊँची किसी स्थितिमें भी तुम्हें आनन्द और शान्तिके यथार्थ दर्शन नहीं होंगे।

इसलिये परम शान्ति और परमानन्दमय भगवान्के साथ सम्बन्ध जोड़ लो; फिर तुम जहाँ भी रहोगे—वहीं शान्ति और आनन्दको आकर्षित कर सकोगे और

दूसरोंमें वितरण भी कर सकोगे। याद रखो—उन मनुष्योंका संग करो, अधिक-से-अधिक समय उनके साथ रहने और उनके निकट

होकर उनकी सेवा करनेमें बिताओ, जिनका हृदय परम शान्ति और परम आनन्दके समुद्र भगवान्में निमग्न है। उनके संगसे—अविरत संगसे तुम्हारे हृदयका भी भगवानुके साथ सम्बन्ध जुड़ जायगा। फिर तुम्हारे

हृदयके द्वार भी परम आनन्द और परम शान्तिके लिये खुल जायँगे। ऐसे महापुरुष जगत्में सर्वत्र शान्ति और आनन्दका प्रवाह ही बहाया करते हैं;

जहाँ शोक, अशान्ति, विषाद और भय होता है, वहाँ यदि उनकी हृदयस्थ शान्ति और आनन्दकी किरणें पहुँच जाती हैं तो वे शोक, अशान्ति आदिके अन्धकारका नाश करके आनन्द और शान्तिकी अत्युज्ज्वल चाँदनी फैला देती हैं।

त्यों-ही-त्यों शोक और अशान्ति भी बढ़ते जायँगे। फिर तुम जहाँ जाओगे, शोक और अशान्ति भी तुम्हारे 'शिव'

देवर्षि नारद आवरणचित्र-परिचय—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्ति शार्ङ्गधन्वनः। काटनेसे इनकी माताजी भी इस संसारसे चल बसीं। अब

नारदजी इस संसारमें अकेले रह गये। उस समय इनकी गायन्माद्यन्तिदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥ अवस्था मात्र पाँच वर्षकी थी। माताके वियोगको भी (श्रीमद्भा० १।६।३९)

श्रीसृतजी शौनकादि ऋषियोंसे देवर्षि नारदकी महिमा

बताते हुए कहते हैं-अहो! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवानुकी कीर्तिको अपनी वीणापर

गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ

इस त्रितापतप्त जगतुको भी आनन्दित करते रहते हैं।

भगवद्धक्तिके प्रधान आचार्य परम भागवत देवर्षि

नारदजीका उदात्त चरित जगत्के लिये परम आदर्श है।

ये ज्ञानके स्वरूप, भक्तिके सागर, प्रेमके भण्डार, दयाके निधान, आनन्दकी राशि, सदाचारके आधार, सर्वभूतोंके

सुहृद् तथा समस्त सदुगुणोंकी खान हैं। ये भागवत-धर्मके आचार्य, भक्तिशास्त्रके प्रवर्तक एवं स्वयं परम भागवत हैं।

देवर्षि नारद पहले गन्धर्व थे। एक बार ब्रह्माजीकी सभामें सभी देवता और गन्धर्व भगवन्नामका संकीर्तन

करनेके लिये आये। नारदजी भी अपनी स्त्रियोंके साथ उस सभामें गये। भगवान्के संकीर्तनमें विनोद करते हुए देखकर ब्रह्माजीने इन्हें शुद्र होनेका शाप दे दिया। उस

शापके प्रभावसे नारदजीका जन्म एक शूद्रकुलमें हुआ। जन्म लेनेके बाद ही इनके पिताकी मृत्यू हो गयी। इनकी माता दासीका कार्य करके इनका भरण-पोषण करने

लगी। एक दिन इनके गाँवमें कुछ महात्मा आये और चातुर्मास्य बितानेके लिये वहीं ठहर गये। नारदजी बचपनसे ही अत्यन्त सुशील थे। वे खेलकूद छोड़कर उन साधुओं

सेवा भी बड़े मनसे करते थे। सन्त-सभामें जब भगवत्कथा होती थी तो ये तन्मय होकर सुना करते थे। सन्तलोग इन्हें अपना बचा हुआ भोजन खानेके लिये देते थे।

साधुसेवा और सत्संग अमोघ फल प्रदान करनेवाला होता है। उसके प्रभावसे नारदजीका हृदय पवित्र हो गया

और इनके समस्त पाप धुल गये। जाते समय महात्माओंने

के पास ही बैठे रहते थे और उनकी छोटी-से-छोटी इन्होंने ही भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। इनकी समस्त लोकोंमें अबाधित गति है। इनका मंगलमय जीवन

प्रसन्न होकर इन्हें भगवन्नामका जप एवं भगवान्के

थे, अचानक इनके हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये और थोडी देरतक अपने दिव्यस्वरूपकी झलक दिखाकर अन्तर्धान हो गये। भगवान्का दुबारा दर्शन करनेके लिये

नारदजीके मनमें परम व्याकुलता पैदा हो गयी। वे बार-बार अपने मनको समेटकर भगवानुके ध्यानका प्रयास करने लगे, किंतु सफल नहीं हुए। उसी समय आकाशवाणी

हुई—'हे दासीपुत्र! अब इस जन्ममें फिर तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त करोगे।'

नहीं होगा। अगले जन्ममें तुम मेरे पार्षदरूपमें मुझे पुनः

भगवान्का परम अनुग्रह मानकर ये अनाथोंके नाथ

दीनानाथका भजन करनेके लिये चल पड़े। एक दिन जब

नारदजी वनमें बैठकर भगवान्के स्वरूपका ध्यान कर रहे

समय आनेपर नारदजीका पांचभौतिक शरीर छूट गया और कल्पके अन्तमें ये ब्रह्माजीके मानस पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। देवर्षि नारद भगवान्के भक्तोंमें

सर्वश्रेष्ठ हैं। ये भगवानुकी भक्ति और माहात्म्यके विस्तारके लिये अपनी वीणाकी मधुर तानपर भगवदुगुणोंका गान करते हुए निरन्तर विचरण किया करते हैं। इन्हें

भगवानुका मन कहा गया है। इनके द्वारा प्रणीत भक्तिसूत्रमें भक्तिकी बडी ही सुन्दर व्याख्या है। अब भी ये प्रत्यक्षरूपसे भक्तोंकी सहायता करते रहते हैं। भक्त प्रह्लाद, भक्त अम्बरीष, ध्रुव आदि भक्तोंको उपदेश देकर

संसारके मंगलके लिये ही है। ये ज्ञानके स्वरूप, विद्याके भण्डार, आनन्दके सागर तथा सब भूतोंके अकारण प्रेमी और विश्वके सहज हितकारी हैं।

श्रीनारदजी व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी

शुकदेवजीके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत तथा श्रीवाल्मीकि-रामायण-जैसे उदात्त ग्रन्थ देवर्षि नारदकी कृपासे ही हमें स्वमाप्तरेपांडेंत्पा क्राइटलाने इनिस्सा Intros:/विडट.सुँपु/रेकाaसमूख वो लाके क्रीहें।WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ५ ] भगवन्नाम-महिमा भगवन्नाम-महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) भगवानुके नामकी महिमा अपार है, अपरिमित है। ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। वाणीके द्वारा उसकी महिमा स्वयं भगवान् भी नहीं यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥ बतला सकते, तब दूसरा तो बतलायेगा ही क्या? जैसे (विष्णुप्राण ६।२।१७) खेतमें बीज किसी भी प्रकारसे बोया जाय, उससे लाभ-'सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे, ही-लाभ है, इसी प्रकार भगवान्के नामका जप किसी द्वापरमें पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल भी प्रकारसे किया जाय, उससे लाभ-ही-लाभ है। कलियुगमें केवल श्रीकेशवके कीर्तनसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। श्रीमद्भागवतमें बतलाया है— साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। नामका जप यदि ध्यानसहित किया जाय तो सारे विघ्नोंका नाश होकर आत्माका उद्धार हो जाता है। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदु:॥ पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः। योगदर्शनमें कहा है-हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥ तस्य वाचकः प्रणवः। (१।२७) 'उस परमात्माका वाचक (नाम) ओंकार है।' (६।२।१४-१५) 'महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि चाहे तज्जपस्तदर्थभावनम्। (१।२८) पुत्रादिके संकेतसे हो, हँसीसे हो, स्तोभ (गीतके आलापके 'उसके नामका जप और उसके अर्थकी भावना रूप)-से हो और अवहेलना या अवज्ञासे हो, यानी स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये।' वैकुण्ठभगवान्का नामोच्चारण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।' देता है। जो मनुष्य ऊँचे स्थानसे गिरते समय, मार्गमें पैर (१।२९) फिसल जानेपर, अंग-भंग हो जानेपर, सर्पादिद्वारा डँसे 'ऐसा करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी जानेपर, ज्वरादिसे संतप्त होनेपर अथवा युद्धादिमें घायल प्राप्ति भी होती है।' होनेपर विवश होकर भी 'हरि' (इतना ही) कहता है, गीतामें भगवान् कहते हैं-वह नरकादि किसी भी यातनाको नहीं प्राप्त होता।' ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। फिर यदि नामका जप मनसे किया जाय तो उसकी यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ बात ही क्या है ? क्योंकि मानसिक जपकी विशेष महिमा (6915) बतलायी गयी है। श्रीमनुजी कहते हैं-'जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा विधियज्ञाञ्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणै:। चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥ पुरुष परमगतिको प्राप्त हो जाता है।' (२।८५) 'विधियज्ञ (होम)-से उच्चारण करके किया हुआ श्रीभगवान्के अनेक नाम हैं। उनमेंसे किसी भी जपयज्ञ दस गुना श्रेष्ठ है और उपांशु सौ गुना श्रेष्ठ है नामका जप किसी भी कालमें, किसी भी निमित्तसे कैसे तथा मानस-जप हजार गुना श्रेष्ठ है।' भी क्यों न किया जाय, वह परम कल्याण करनेवाला नामकी महिमा सभी युगोंमें है, किंतु इस कलिकालमें है। यदि भगवान्के नामका जप गुण, प्रभाव, तत्त्व, तो इसकी महिमा और भी विशेष है। श्रीवेदव्यासजीने रहस्य, अर्थ और भावको समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक कहा है-निष्कामभावसे किया जाय, तब तो तत्काल ही परमात्माकी

िभाग ९० प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि भगवानुके भजनके प्रभावसे समान हैं। चाहे जिस नामका जप किया जाय, सभी साधकको भगवानुके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, कल्याण करनेवाले हैं। जैसे पानी, जल, नीर, अपू, वाटर जिससे भगवान्की प्राप्ति होती है। भगवान्ने गीतामें आदि जलके ही विभिन्न नाम हैं और उन सबका एक कहा है-ही अर्थ है। इसी प्रकार भगवानुके ॐ, हरि, वास्देव, तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। राम, कृष्ण, गोविन्द, नारायण, शिव, महादेव आदि सभी ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ नामोंका एक ही अर्थ है। अत: किसी भी नामका जप करनेपर भगवत्प्राप्ति हो सकती है। संसारमें भगवन्नाम-(१०।१०) 'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और जपके समान कोई भी साधन नहीं है। ज्ञान, ध्यान, जप, प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग तप, योग आदि सभी साधन नाम-जपकी अपेक्षा कठिन देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।' हैं। अतः इन सब बातोंको सोचकर मनुष्यको नित्य-श्रीभगवान् बाहर-भीतर सब जगह व्यापक हैं, निरन्तर भगवान्के नामका जप और कीर्तन करना परिपूर्ण हैं; किंतु अज्ञानके कारण नहीं दीखते। वह चाहिये। भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं-अज्ञान भी भगवान्के नाम-जपके प्रभावसे नष्ट हो जाता 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।' है। श्रीतुलसीदासजीने कहा है— (8133) 'इसलिये तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य-राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार। शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।' तुलसी भीतर बाहेरहँ जौं चाहसि उजिआर॥ भगवन्नाम-जपके प्रभावसे सारे पापोंका नाश वस्तुत: संसारमें भगवान्के समान कोई भी पदार्थ नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवानुके एक अंशमें होकर पापी भी परमगतिको प्राप्त हो जाता है। है। जो इस तत्त्वको जान लेता है, वह एक क्षण भी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं— भगवानुको नहीं भूल सकता। भगवानुने गीतामें कहा है— जबहिं नाम हिरदै धर्चा भयो पाप को नास। मानो चिनगी अग्नि की परी पुरानी घास॥ यो मामेवमसम्मृढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद् भजित मां सर्वभावेन भारत॥ अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥ फिर धर्मात्माकी तो बात ही क्या है ? द्रौपदी एवं (१५ | १९) गजेन्द्रके जैसा प्रेम होनेपर तो सकाम भजनसे भी 'हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार भगवान मिल सकते हैं, फिर निष्काम भजनसे भगवानुकी तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे प्राप्ति हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है। जो मनुष्य निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।' हर समय भगवानुके नामका स्मरण करता है, उसके इसलिये हमलोगोंको उचित है कि भगवानुके तो भगवान् अधीन ही हो जाते हैं। श्रीगोस्वामीजीने शरण होकर भगवन्नामके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, कहा है-अर्थ और भावको समझकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक निष्काम प्रेमभावसे, ध्यानसहित, गुप्तरूपसे भगवान्के नामका सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥ यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्के सभी नाम मानसिक जप नित्य-निरन्तर करें। सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥ जिसने 'हरि'—ये दो अक्षर एक बार भी उच्चारण कर लिये, उसने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये परिकर बाँध लिया, फेंट कस ली।

कर्तव्यपालन भी आवश्यक संख्या ५ ] कर्तव्यपालन भी आवश्यक ( ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ) ब्रह्मतत्त्व-निरूपण परम कल्याणकारक है, किंतु किसीको अपने मित्रका तार मिलता है कि 'मैं कल परिस्थितिका सामना करना भी आवश्यक हो जाता दो बजेकी गाड़ीसे आऊँगा, स्टेशनपर किसीको सुविधाके है। अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा भी परिस्थितिके लिये भेज देना।' यदि इस तारको पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कि मेरे मित्रका तार आया, आज मेरे अनुसार अपने निर्गुण, निराकार, अलक्ष्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य रूपसे सगुण-साकार रूपमें मित्रका तार आया—इस प्रकार रट लगाकर नाचने अवतरित होकर जगत्का कल्याण करते हैं। जब सभी लगे, तारको सोनेकी चौकीपर रखकर उसकी गन्धाक्षत, अनर्थोंके मूलभूत अधर्मकी निवृत्ति, परमकल्याणमूल पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजा करे, बाजे बजवाये धर्मका संस्थापन, प्राणियोंमें सद्भावना एवं विश्वकल्याणके और उत्सव मनाये, किंतु दो बजे मित्रको लेनेके लिये लिये ही भगवान् नानाविध अवतार धारण करते हैं, स्टेशनपर जाना है अथवा किसीको भेजना है, इस तब भगवद्भक्तोंका भी यह परम कर्तव्य है कि अपने बातको भूल जाय और मित्र ठीक समयपर आकर परमाराध्य भगवान्का अनुसरण करें। जिस देशमें, किसी प्रकारकी सुविधाको न पाकर परेशान भटकता जिस जातिमें जन्म हो, उसके प्रति भी जीवका कुछ हुआ उसके यहाँ पहुँचे और उसके ताण्डव नृत्यसहित उत्सवको देखे तो क्या ऐसे मित्रको कोई अपना प्रेमी कर्तव्य होता है। खाना, पीना, सोना, रोना, सन्तान उत्पन्न करना तो पशु भी जानता है, पर मानव-जीवन या भक्त कहेगा? ठीक, इसी प्रकार हमें मंगलमय केवल इतने ही भरके लिये नहीं है। उसका जन्म तो भगवानुका संकीर्तन तो करना ही चाहिये, किंतु धर्मकी जय, अधर्मकी निवृत्ति एवं भगवत्प्राप्तिके लिये वेदशास्त्रस्वरूप भगवदाज्ञाओंका पालन भी अवश्य होता है। जो अपने वर्णाश्रमानुसार कर्तव्य कर्मका करना चाहिये। देशकी रक्षाके लिये, धर्मकी रक्षाके परित्यागकर केवल रामनाम रटा करता है, वह वस्तुत: लिये, सभ्यता एवं संस्कृतिकी रक्षाके लिये मर-मिटनेमें भगवान्का प्रेमी नहीं, अपितु भगवान्का द्वेषी है; तिनक भी संकोच नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी, क्योंकि भगवान्का जन्म ही 'परित्राणाय साधूनां गृहस्थ, वानप्रस्थ ही नहीं, अपित् संन्यासीका भी यह विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि परम कर्तव्य है कि वह अपने देश, धर्म, जाति तथा युगे युगे॥' उक्तिके अनुसार अधर्मकी निवृत्ति, धर्मकी सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये उचित प्रयत्न करे।

संस्थापना, सज्जनोंके परित्राण एवं असुरोंके आसुरी 'स्कन्दपुराण' का वाक्य है कि अत्यन्त प्रयत्न करके भावका विनाश करनेके लिये ही होता है। कहा भी भी इस वैदिक मार्गका संस्थापन करो। इसके सुस्थिर है—'अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः। हो जानेपर ही आधि-व्याधि, शोक-सन्ताप मिटेगा,

ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः।' भला दीनता, दरिद्रता, परतन्त्रता भी मिटेगी और सुख, समृद्धि, भगवान्का अवतार ही जिस अपने परमप्रिय सनातन शान्ति, स्वाराज्य, वैराज्य, साम्राज्य, अनन्त धन-धान्यकी

वैदिक धर्मके संस्थापनके लिये होता है, उस धर्मकी प्राप्ति होगी—'स्थापयध्विममं मार्गं प्रयत्नेनापि भो

रक्षाके कार्यमें जो हाथ न बँटाये तो वह फिर भगवान्का **द्विजाः। स्थापिते वैदिके मार्गे सकलं सुस्थिरं भवेत्॥** 

भक्त कैसे कहला सकता है? कल्पना कीजिये कि विपत्तियोंका कोई आवाहन नहीं करता, कोई दु:ख,

भाग ९० दरिद्रता, दीनता, हीनताको बुलाना नहीं चाहता। परंतु अनार्यसेवित, अकीर्तिकर पाप कहाँसे प्राप्त हुआ?' जब उनके कारण (अधर्म)-को पैदा किया जाता है, 'कुतस्त्वा कश्मलिमदं विषमे समुपस्थितम्। तब फलरूप सारी विपत्तियाँ भी भोगनी ही पड़ेंगी। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥' केवल भगवान्ने इसी तरह जब धर्मानुष्ठानपर आरूढ़ होंगे, तब जैसे ही नहीं कहा, किंतु अर्जुनने भी कार्पण्यदोष स्वीकार बरसाती नदियाँ तीव्र वेग एवं विशेष जलराशिके साथ किया—'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां समुद्रकी ओर स्वेच्छापूर्वक बढ़ती हैं, उसी तरह सारे धर्मसम्मृढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे सुख, सम्पत्ति, धर्मानुष्ठान करनेवालोंके पास अवश्यमेव शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।' कृपणताका आयेंगे—'जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि अर्थ कई आचार्योंने कई प्रकारसे किया है। किसी ताहि कामना नाहीं॥ तिमि सुख संपति बिनहिं आचार्यका कहना है कि जो थोड़ा-सा भी व्यय सहन बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥' नहीं कर सकता, वह कृपण है—'यः स्वल्पामिप स्वात्मनो वित्तक्षतिं न क्षमते स कृपणः।' अहर्निश 'यश्च स्थापयितुं शक्तो नैव कुर्याद्विमोहित:। तस्य हन्ता न पापीयानिति वेदान्तनिर्णयः' अर्थात् आजतक लाखों शरीर अन्याय, अत्याचार, दुराचार, जो इस वैदिक धर्ममार्गकी स्थापनामें समर्थ होता हुआ दुर्विचार, पापाचार, व्यभिचारमें खत्म हुए होंगे, किंतु एक शरीरको जब सदाचार, सद्धिचार, सद्धर्म, सत्कर्म, भी प्रयत्न नहीं करता, उसके मारनेमें कोई पाप नहीं सत्संगमें लगानेके लिये कहा जाय तो उत्तर देते हैं कि होता, यह वेदका निर्णीत सिद्धान्त है। वैसे तो यह 'अजी, मरनेकी भी फुर्सत नहीं, यह उनका थोड़ा-सा अर्थवाद ही है, किंतु अर्थवाद भी गुणवाद, अनुवाद उचित व्यय सहन न करना ही कृपणता है।' श्रुतिने नहीं, भूतार्थवाद है। यह सर्वथा ठीक है कि अपने भी बतलाया है—गार्गि, जो इस अक्षर, अनन्त, अखण्ड, समक्ष माता-पिता, गुरुजनोंकी हत्या, उनका अपमान, एकरस, अद्वैत परमात्माको बिना जाने हुए इस लोकसे अत्याचारियोंद्वारा उनके ऊपर अत्याचार, व्यभिचारियोंद्वारा माँ, बहन, बेटीका व्यभिचार देखकर भी क्षमा और चला जाता है, वह कृपण है—'**यो ह वा गार्गि** एतदक्षरमविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।' दयाकी डींग हाँकना केवल कायरता, कृपणता है। धर्मके अनुकूल क्षमा और दया पुण्य हैं, पर धर्मके ऐसी कृपणता अहंता, ममताको आगे करके हुआ प्रतिकूल वह पाप है। वैसे तो मृत्युसे बढ़कर कोई करती है। यदि साधारण स्त्रियाँ यह सोचती हैं कि कष्ट तथा स्वर्गके राज्यसे बढ़कर कोई सुख नहीं, हमारे पति-पुत्र धर्म, देश, राष्ट्रकी रक्षाके लिये प्राणको किंतु अर्जुन सबसे बड़े सुख त्रैलोक्यराज्यका परित्याग हथेलीपर रखकर, जीवनको संकटमें डालकर रणक्षेत्रमें तथा सबसे बड़े दु:ख मृत्युको दयापरवश होकर सहन आगे बढ़ें, इसकी अपेक्षा भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करनेके लिये तैयार था—'यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं करना अच्छा है, हम कभी भी अपने पति-पुत्रको शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं रणमें न भेजेंगी, तो अहंता-ममताके वशीभूत होकर

क्रिंग्विपांड्यमः । प्रोइद्भारपुर निर्मान क्रिक्षिकः अपूर्वे प्रकृति प्रमानिकः प्रमान

इस तरह पति-पुत्रको बचाना परम अधर्म है। भरतपुत्र

पुष्कल महाराजकी धर्मपत्नीने भगवान् रामचन्द्रके

अश्वमेधयज्ञमें अश्वरक्षाके लिये जाते हुए पुष्कलसे

यह कहा था कि 'पतिदेव! मैं वीरपत्नी हूँ, आप

भवेत्॥' यदि धृतराष्ट्रके पुत्र शस्त्र हाथमें लेकर मुझ

अशस्त्रको युद्धमें मार दें, तो इसमें मेरा अधिक

कल्याण है। 'अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्तु

महीकृते' परंतु भगवान्ने हमें पाप ही बतलाते हुए

कर्तव्यपालन भी आवश्यक संख्या ५ ] डालकर आगे बढ़ना, कभी मुझ वीर-पत्नीको लजाना ऐसा हो, परंतु चौराहेपर से उस सिपाहीको कभी नहीं। कहीं मेरी देवरानी, जेठानी मेरी हँसी न करें।' हटना नहीं चाहिये। यदि वह वहाँसे चला जाता है लोग कहा करते हैं-गीतामें अर्जुनके इस प्रश्नका और इतनेमें ही उस चौराहेपर मोटर, ताँगा, साईकिलकी कि 'वीरोंके मर जानेसे उनकी स्त्रियाँ दूषित हो दुर्घटना हो जाती है तो उसकी जिम्मेदारी किसपर जायँगी, वर्णसंकरी सृष्टि हो जायगी।' भगवान्ने कुछ रहेगी ? बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता, युवती स्त्री तथा छोटे-उत्तर नहीं दिया। कुछ तो कहते हैं कि भगवान्ने छोटे दुधमुँहे बच्चेवाला कोई हत्यारा जजके सामने इस बातको मान लिया कि कलियुगमें यह होना ही आता है। भले ही साधारण लोगोंकी दृष्टिमें उसको चाहिये। किंतु बाल-की-खाल निकालनेवाला अर्जुन फाँसी देना सारे कुटुम्बको नष्ट कर देना होगा, परंतु जजका यही कर्तव्य है कि वह और किसी भी बिना उत्तर पाये कब चुप बैठा रह सकता था। वह तो भगवान्के इस कथनपर भी कि मैं एक अंशसे परिस्थितिका विचार न करते हुए उसको उचित दण्ड दे। सारांश यह कि सबको अपने कर्तव्यका पालन समस्त संसारको व्याप्त कर रहा हूँ, मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है। वह चुप न बैठा और कहने लगा— करना चाहिये। भगवन्! आप जो कुछ कहते हैं, सब ठीक है, अर्जुन अपने समयका गण्यमान्य सम्मानित आदर्श ऋषि लोग भी आपको ऐसा बतलाते हैं, परंतु भगवन्! व्यक्ति था। अतः भगवान्ने पहले श्लोकसे ही उत्तर यदि सम्भव हो तो मैं आपके उस रूपको देखना दिया कि अर्जुन! यदि तुम अपने धर्मसे विमुख हो चाहता हूँ — 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपम्' और अन्तमें जाओगे तो विधवाएँ भी विमुख हो सकती हैं; क्योंकि वे विचारेंगी कि हमारे यहाँका गण्यमान्य अर्जुन ही उस रूपको देखकर ही माना। वह अर्जुन बिना उत्तर पाये, इतनी परिस्थितिको बिना सुलझाये आगे कैसे यदि अपने धर्मसे विमुख हो गया तो हम अपने चल सकता था? भगवान्ने तो पहले ही श्लोकमें धर्मका पालन क्यों करें—'यद्यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो इसका उत्तर दे दिया कि हे अर्जुन! तू बुद्धिमान् जन:।' जिसके घरकी माँ, बहन, बेटियाँ यह देखेंगी पण्डितों-जैसी बात करता है और जिनके लिये शोक कि हमारे भाई, पिता, पुत्र अपने धर्म-कर्मकी रक्षाके नहीं करना चाहिये, उनके लिये शोक करता है— लिये बलिवेदीपर प्राणोंको न्योछावर करनेको तैयार हैं 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। तो क्या वे कभी व्यभिचारिणी हो सकती हैं? आज गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥' तुझे अपने हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारी संस्कृति खतरेमें हैं। कर्तव्यका पालन करना चाहिये और यह न सोचना भगवानुका भजन तो हर समय करना ही चाहिये। वह चाहिये कि स्त्रियाँ विधवा होकर वर्णसंकर पैदा करेंगी। तो हमारा सहारा है, पर साथ ही कर्तव्यविमुख एक सिपाही किसी चौराहेपर पहरा दे रहा है। वहाँसे कदापि न होना चाहिये। 'मामनुस्मर युध्य च' यही बीस कदमपर कोई भयंकर काण्ड होने लगता है। भगवान्का आदेश है। इस समय चुप बैठना कायरता उस समय भले ही साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें उस है। हमें दृढ़-संकल्प होकर कर्तव्यपालन करना चाहिये। चौराहेसे हटकर उस बीस कदमपर होनेवाले काण्डको हमारे प्राण चले जायँ, भले ही हम सफल न हों, सुलझाना उस सिपाहीका कर्तव्य हो, परंतु बुद्धिमान् परंतु सर्व पापोंसे विमुक्त होकर मोक्ष अवश्य प्राप्त लोग इस बातको कभी स्वीकार न करेंगे। उनका तो होगा 'यः स्थापयितुमुद्युक्तः श्रद्धयैवाक्षमोऽपि सन्। यही कहना रहेगा कि भले ही बीस कदमपर ही सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यन्ज्ञानमवाप्नुयात्॥'

भजन कैसे करें ? [ गताङ्क ४ पृ० सं० १२ से आगे ] .. ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) एक होता है—'शब्दजाल'। महाभारतयुद्धमें 'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥' भीमसेनने अश्वत्थामा नामक हाथीको मार दिया। फिर (गीता १७।१५)

जाकर युधिष्ठिरसे बोले कि आप कह दीजिये कि अश्वत्थामा मर गया, तब द्रोणके हाथसे हथियार गिर पडेंगे और उसी अवस्थामें उन्हें मारा जा सकता है।

धर्मराज बहुत असमंजसमें पड गये, लेकिन अन्तत:

किसी प्रकार दब गये। उन्होंने कह दिया—'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो'—अश्वत्थामा मारा गया आदमी या हाथी। बादमें हाथी बोले, तबतक श्रीकृष्णने शंख बजा दिया और वह शब्द सुनायी नहीं दिया। अश्वत्थामा मारा गया-यह छल हो गया। शब्द-छलसे अगर हम

किसीको वही शब्द कह देते हैं और हमारे मनमें समझानेकी बात कोई दूसरी रहती है तो वह झूठ है। अतएव उद्वेगकारी वचन न बोले, सच बोले और सच भी मधुर शब्दोंमें कहे। लोग कहते हैं गर्वसे कि में सच बोलता हूँ, चाहे किसीको अच्छी लगे या खारी

लगे। परंतु कोई उनसे वैसे ही बोले तब। यह विचारणीय है। इसलिये वाणीको बोलना चाहिये अमृतमें घोलकर— 'सत्यं प्रियहितं च यत्'।

बोलिहं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥ (रा०च०मा० ७।३९।८)

मोर बड़ा मीठा बोलता है और साँप भी खा जाता

है। ऊपरसे मीठा बोलना ही नहीं, हृदय भी मधुर हो और जबान भी मधुर हो। मीठी बोलीका अर्थ क्या है?

जिसमें हितकी भावना भरी हो। इसलिये दूसरेके मनमें उद्वेग करनेवाली जबान

बोलना पाप, झूठ बोलना पाप, अप्रिय बोलना पाप, दूसरेके अहितकी बात बोलना पाप और व्यर्थ बोलना पाप है। इन पापोंसे जबानको बचाकर क्या करें? सबमें भगवान् हैं—यह समझकर सबका हित करनेकी इच्छासे

भगवानुका नाम लेता रहे।

यह वाणीका सद्पयोग है। अब मनकी बात करें। मनसे भी पाँच पाप होते हैं।

हमने ऐसे आदमी देखे हैं, जो कहते हैं—'हम तो बहत दुखी हैं। सारा संसार हमारा वैरी है। हमारे भाग्यमें तो

िभाग ९०

सुख लिखा ही नहीं है। रात-दिन रोते रहते हैं। हमें तो दु:ख-ही-दु:ख है।' चाहे हो नहीं, बिना हुए ही दु:ख उपजा लेते हैं। यह विषाद—यह मनका पाप है। उनके

मनमें निरन्तर आता रहे कि इसको कैसे मार दें, इसके घरमें कैसे आग लग जाय, इसका बेटा कैसे मर जाय, यह बीमार हो जाय तो बहुत अच्छा, इसका दीवाला निकल जाय तो बहुत अच्छा, इसके बेटेको बीमारी हो

जाय, उसकी नौकरी छूट जाय तो बहुत अच्छा। यह क्रूरता है। क्रूर विचार मनके पाप हैं। क्रूरता पाप, विषाद पाप, व्यर्थ चिन्तन-बिना मतलब जगतुकी बातोंको रात-दिन मनमें सोचते रहना, यह पाप है। चौथा पाप है मनका वशमें न रहना और पाँचवाँ पाप है मनमें गन्दी

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

वासनाओंको रखना। इस सम्बन्धमें भगवान्ने कहा है—

(गीता १७।१६) **'मनःप्रसादः'**—भगवानुके राज्यमें रोनेकी जगह कहाँ है ? सब जगह भगवान्का मंगल-विधान कार्य कर

रहा है। हँसो, निरन्तर हँसते रहो। भागलपुरमें श्रीरामसकलसिंहजी रहते थे। प्रोफेसर थे। मैं उनसे एक बार मिला। उन्होंने सारी बातें हँसनेमें कीं। वे हँसनेकी भाषामें बात करते थे। केवल हँसते और हँसाते। यह

है—'मन:प्रसाद:।' मनमें नित्य प्रसन्न रहे। मनको सौम्य रखे, शीलवान् रखे, ठण्डा रखे। मनमें दया भरी

सत्यप्रिय बोले और जब समय मिले तो जीभके द्वारा रखे। मन मौन रहे। मनमें भगवानुका मनन करे, जगतुका मनन छोड़ दे। मन निगृहीत रहे, मन वशमें रहे और

संख्या ५ ] भजन कैरं	ने करें? १३
******************	****************************
मनमें शुद्ध भावोंको भरता रहे। ये पाँच मनके पुण्य हैं	देखा और पूछा कि इसमें नाम-जपकी अपील क्या छाप
और ऐसे मनको क्या करे ? भगवान्के साथ जोड़े रखे।	रखी है? मैंने कहा—यह अपील हम करते हैं। वे
वाणीसे भगवान्का नाम, मनसे भगवान्का चिन्तन	बोले—इससे कितना नाम-जप होता है ? मैंने कहा—
और शरीरसे भगवान्की सेवा—ये तीन बातें किसीके	अनुमानतः दस करोड़। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए
जीवनमें आ जायँ तो उसका जीवन भजनमय हो जाय।	कहा—बड़ा अच्छा करते हो। बड़ा मंगल होता है। फिर
इसको कहते हैं—भजन। हम नियमित दो घण्टे माला	मुझसे पूछा—तुम भी करते हो या लोगोंसे करवाते ही
फेरते हैं, यह बड़ा भजन है; परंतु इससे ऊँचा वह भजन	हो ? मेरे यह कहनेपर कि महात्माजी ! मैं भी करता हूँ,
है, जब दिनभर माला फेरें। एक रामनामके आढ़तिया	उन्होंने तिकयेके नीचेसे माला निकाली और बोले—
थे। वे बही-खाता रखते थे। वे सबके पास जाते थे और	देखो, मैं भी रातमें, अकेलेमें जप करता हूँ। वे बड़े
नाम–जपके लिये प्रार्थना करते थे। कोई नहीं मानता तो	विनोदी थे। मेरे पास तुलसीकी एक नयी माला थी।
गाली भी बक देते। कहते, नाम नहीं जपता है? मर	उनकी माला पुरानी थी। मैंने कहा—बापूजी! मैं यह
जायगा-मर जायगा, साथ कुछ भी नहीं जायगा। हिन्दू,	माला लाया हूँ, ले लीजिये। वे बोले—तुम मुझे माला
मुसलमान, पारसी और ईसाई—सबके पास जाते थे और	देने आये हो, गुरु बनने। मैंने कहा—नहीं, बापूजी! माला
कहते कि तुम जिस भगवान्को मानते हो, उसके लिये	देने नहीं आया। आपकी माला पुरानी हो गयी थी,
लिख दो कि उसे याद करेंगे। इतना नामजप करनेके	इसलिये कहा। उन्होंने कहा—तुम अधिक माला जपो,
लिये लिख दो। अपने बही-खातेमें लिखवाते। एक बार	तब तुम्हारी माला लेंगे। मैंने कहा—अच्छी बात,
मैं बम्बईमें श्रीजमनालालजी बजाज और रामनामके	करूँगा। फिर उन्होंने मुझसे माला ले ली। इस प्रकारकी
आढ़ितयाको साथ लेकर गांधीजीसे मिलने गया। वहाँ	भगवान्के नाममें उनकी रुचि थी।
उन्होंने गांधीजीके सामने अपनी बही रख दी और	जिह्वाका असली उपयोग क्या है ? भगवान्का नाम
बोले—महाराज! यह खाता है, इसमें रामनामके लिये	लेना। रात-दिन जीभसे भगवान्का नाम जपता हुआ सब
हस्ताक्षर कर दीजिये। गांधीजीने कहा—यह क्या है?	काम करे। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इसे सभी कर
तब श्रीजमनालालजीने उन्हें समझाया कि ये इस प्रकार	सकते हैं। यह चीज तो इतनी सीधी-सरल है और
लोगोंको रामनाम लेनेको कहते हैं। गांधीजी बहुत प्रसन्न	सर्वोत्तम है, इसमें तोल-मोल कुछ नहीं लगता और समय
हुए और बोले—बड़ा मंगल कर रहे हो। बड़ा अच्छा	नहीं जाता। माताएँ रसोई बनाती जायँ, परोसती जायँ,
कार्य कर रहे हो; पर मैं सही (हस्ताक्षर) नहीं करूँगा।	जिमाती जायँ और राम-नाम बोलती जायँ, कोई बात
उन्होंने पूछा—क्यों नहीं करेंगे? वे महात्मा थे, उन्हें	नहीं। घरवाले नाराज होंगे तब, जब काम नहीं करेंगे।
कोई डर नहीं था, इसलिये पूछ दिया। गांधीजीने उत्तर	साधन करना है। काम करो भगवान्की सेवा मानकर,
दिया—जब मैं अफ्रीकामें था, तब नाम-जप करता था	तब सभी राजी रहेंगे। कहेंगे कि यह बड़ी अच्छी है,
माला फेरकर, संख्या रखकर, परंतु अफ्रीकासे यहाँ लौट	बहुत काम करती है। झाड़् देना, बर्तन माँजना इत्यादि
आनेपर मेरा यह अभ्यास है—मैं दिनभर नाम–जप करता	सारे कार्य भगवत्सेवा मानकर करे। तनसे सेवा, मनसे
हुआ काम करता हूँ। इसलिये मैं संख्या क्या लिखूँ?	स्मरण और जीभसे नाम-जप—ये तीन चीजें असली
गांधीजीने यह बात मेरे सामने कही है। इतना बड़ा	भजन हैं। दिन–रात भजन हो सकता है, सिर्फ एक जगह
प्रकाण्ड कर्मठ व्यक्ति जो दिनभर कार्यमें लगा रहे, वह	नहीं। जब मन्दिरमें जाय तो पूजा करे। भगवान्के
नाम–जप करता रहे—यह बहुत बड़ी बात है।	श्रीविग्रहके सामने बैठे तो उनकी षोडशोपचार, पंचोपचारसे
एक बार मैं साबरमती आश्रममें उनके पास गया।	जैसी चाहे, वैसी पूजा करे और दिनभर सारे जगत्के
मेरे पास 'कल्याण' का अंक था। उसे लेकर उन्होंने	प्राणियोंमें भगवान्को देखकर उनकी पूजा करे—

[भाग ९० \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* कहा—निकल गया! मेरे मुखसे राम निकल गया!! फिर सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥ प्राण भी निकल जायँ। फिर प्राण भी निकल गये। राजाने (रा०च०मा० १।८।२) सभीको प्रणाम करे, सबकी पूजा करे। शत्रु कोई प्राण त्याग दिये। नहीं, पराया कोई नहीं। सब हमारे भगवान्के, नारायणके यह है-गुप्त भजन। भजनको बताया नहीं जाता। रूप हैं। इस प्रकारसे तीनोंके द्वारा भगवान्की सेवा करे तो जहाँ भजनको बताया जाता है, वहाँ भगवान् नहीं बसते। जीवन भगवद्भजनमय हो जाय। फिर उसका परिणाम क्या उसके मनमें भगवान नहीं बसते, वहाँ तो कुछ और चीज बसी रहती है और जहाँ भजन ऐसा हो गया कि होगा? हमारा जीवन भजनमय नहीं है, इसलिये उस आनन्दकी उपलब्धि नहीं है, जिनका है, वे जानते हैं। भजनमय जीवन है, वह भगवन्मय जीवन है। उसमें भगवान् आ बसते हैं। भगवान् उसको अपने हृदयमें बसा भजनमय जीवन हो जानेपर भगवानुका सान्निध्य क्षणभरके लिये भी नहीं छूटता है। भगवान्का भजन करनेवालेके लेते हैं। उसके बिना भगवान् रह नहीं सकते। जहाँ पास भगवान् स्वयमेव रहनेको बाध्य हो जाते हैं। उनको अखण्ड भजन है, जीवन भजनमय है, वहाँ भगवान् बुलाना नहीं पड़ता है। जिसके जीवनमें भगवान्का अखण्ड बिना उसके रह नहीं सकते। भगवान् उसके पास रहना भजन होगा, वहाँ जीवनमें भगवान् आ जायँगे। भगवत्ता पसन्द करते हैं। भगवानुको सुख मिलता है। यह अनुभव आयेगी, ऐश्वर्य आयेगा। यह भगवदीय जीवन (Divine करके देखनेकी चीज है। भगवान्को सुख मिलता है Life) होगा। भगवदीय जीवन तब होता है, जब भगवान् और सुखके लोभसे भगवान् उसके पास रहते हैं। जीवनमें उतर आते हैं। भगवान कब उतरते हैं? जब भगवान् बुलाते हैं। जब कोई ऐसा भजनानन्दी नहीं आता जीवन भगवन्मय होता है। भगवान्ने कहा है— है तो भगवान् उसको बुलाते हैं। आप जानते होंगे रासपंचाध्यायीमें यह बात आयी है। गोपियाँ गयीं अथवा अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥ (रा०च०मा० ५।४८।७) गोपियोंको भगवानुने बुलाया ? किसने पहले वंशी बजायी ? जिस प्रकार लोभीके मनमें धन बसता है, उसी वंशी बजाकर किसने प्रेरणा की? किसने उनके मनमें प्रकार मेरे हृदयमें वह संत बसता है। जैसे लोभी मनमें विचार पैदा किये, इच्छा उत्पन्न की? किसने उनके धनको बसाता है। असली चीज यह है कि ऊपरसे मनको आन्दोलित किया? किसने उनको खींचा-आकर्षित किया? श्रीकृष्णने खींचा। उनका नाम है— छिपाये और अन्दर बढ़ती रहे। इसीका नाम तो प्रेम है। ऊपरसे बहुत छिपाये, पता ही न लगने दे कि कहीं प्रेम खींचनेवाला। कृष्णका अर्थ है—खींचनेवाला। कोई पापी हो तो उसके पापको खींचकर बहा दें और कोई भी है और अन्दरसे रस बरसता रहे। बाहरसे पता न लगने दे कि भजन करता है। मन रखे तो मनको खींच लें। भगवान्ने वंशी बजाकर उन्हें खींच लिया। रासपंचाध्यायी जो पढ़ते हैं, उन्हें एक राजा थे। वे गुप्त भजनानन्दी थे। यह बात किसीको मालूम नहीं थी। रानी चाहती थीं कि मेरे पतिके सबसे पहले एक शब्दपर ध्यान देना चाहिये, वह शब्द मुखसे भी कभी 'राम' निकले। ये भी भजन करें। एक है—'भगवान्'। फिर आगे बढ़ना चाहिये, नहीं तो दिन राजा सोये हुए थे। सोते हुए ही राजाके मुखसे अर्थका अनर्थ हो जायगा। निकल गया—'राऽऽम'। रानीने सुना तो बहुत प्रसन्न भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। हुईं। उन्होंने बाजे बजानेका आदेश दे दिया। रातमें बाजे वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥ बजने लगे। राजाने पूछा—यह कैसी आवाज है? रानीने (श्रीमद्भा० १०। २९। १) भगवान्ने क्या किया? भगवान्ने मन बनाया। कहा—महाराज! आज तो आनन्द आ गया। राजाने कहा-कैसा आनन्द, बताओ तो ? रानीने कहा कि आज इसलिये कि गोपांगनाओंको बुलाना है। क्यों ? इसलिये असिंकष्पांड्यस् Disporduservati https://dasa.ap/dharma.da/Man Es/UFH dan Ferripash/sh नहीं है। गोपांगनाओंके पास अपना जीवन नहीं है— प्रेम अखण्ड रहा हो तो बच्चा जीवित हो जाय। क्या बात है ? बच्चा जीवित हो गया। अर्जुनने कहा है कि 'ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।' जब मैं रथमें चलता था तो देखता था कि मेरे आगे-(श्रीमद्भा० १०।४६।४) ऐसी हैं श्रीगोपांगनाएँ। अतएव भगवान्में तन-मन आगे श्रीकृष्ण चल रहे हैं। आगे कृष्ण, पीछे कृष्ण, दायें लगा दो। भगवान् आपमें आकर बस जायँगे या आपको कृष्ण, बायें कृष्ण और हृदयमें कृष्ण। क्यों ? एक कथा लेकर अपने मनमें लोभीके धनकी तरह बसा लेंगे। जैसे आती है कि एक बार अर्जुन सोये हुए थे। उनके रोम-लोभी धनको छिपाकर रखता है कि उसे कोई देख न रोमसे 'कृष्ण' की ध्वनि निकल रही थी। वहाँ ब्रह्माजी ले, कोई छीन न ले, बढता ही रहे-बढता ही रहे। उसी आये, शंकरजी आये। सभी सुनकर आनन्दोन्मत्त हो गये, प्रकार भगवान् चाहते हैं कि यह मेरे हृदयमें बसा रहे। नाचने लगे। इसलिये भगवानुने मान लिया कि अर्जुनका भगवानुने अर्जुनके लिये अग्निसे वरदान माँगा। जीवन भजनमय जीवन है। कर्म करें और भजनमय जीवन इन्द्रसे कहा कि यदि मुझे वरदान देना है तो यह दें कि रहे। इसीलिये भगवान् सारिथ बने; रात-दिन साथ रहे। अर्जुनमें मेरा प्रेम बढ़ता रहे। सभी भक्त वरदान माँगते इसलिये भगवानुको साथ रखना हो तो असली भजन करे। असली भजनका अर्थ है—तनसे, मनसे और हैं। महाभारतमें कथा आती है कि जब परीक्षित गर्भमें थे तो अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, उन्हें मारनेके वाणीसे भगवानुका सेवन।[समाप्त] नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता नीतिकथा-एक बार राजा युधिष्ठिरने महाराज भीष्मजीसे पूछा-तात! यह बतलानेकी कृपा करें कि जब एक राजा दुर्बल शक्तिवाला हो, साधनहीन हो तो उसे पराक्रमी शत्रु राजाके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये? भीष्मजीने कहा—भारत! मैं इस सम्बन्धमें नीतिमान् विज्ञ पुरुषोंद्वारा अपनायी गयी एक नीतिका दृष्टान्त देता हूँ, जो समुद्र और नदियोंके बीच हुआ था। ध्यानसे सुनो।

नम्रताके व्यवहारसे पराभव नहीं होता

लिये। तब भगवानुने प्रतिज्ञा की कि यदि अर्जुनसे मेरा

संख्या ५]

एक ही चीज है, वह गोपांगनाओंके पास अपना मन ही

एक समयकी बात है। समुद्रने निदयोंसे पूछा—निदयो! मैं देखता हूँ कि बाढ़के समय तुम सब बहुतसे बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़कर अपने प्रवाहमें बहा ले आती हो, किंतु उनमें बेंतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता, इसमें क्या रहस्य है ? इसपर देवनदी गंगाने कहा—नदीश्वर! आपकी बात बहुत अर्थवाली है। जो पेड़ हमारे

प्रवाहमें बहकर आते हैं, वे तनकर गर्वसे हमारे सामने खड़े रहते हैं, हमारे पराक्रमको देखकर झुकते नहीं, नम्र नहीं होते, अकड़कर खड़े ही रहते हैं, अत: इस प्रतिकूल बर्तावके कारण उन्हें नष्ट होकर अपना स्थान छोड़ना

पड़ता है, परंतु बेंत एक ऐसा वृक्ष है, जो ऐसा आचरण नहीं करता, वह हमारे आते हुए वेगको देखता है तो नम्रतासे झुक जाता है, परिस्थितिको पहचानता है और उसीके अनुसार बर्ताव करता है, कभी उद्दण्डता नहीं दिखाता

और अनुकूल बना रहता है, उसमें कोई अकड़ नहीं रहती, इसीलिये वह अपने स्थानपर बना रहता है। जब हमारा वेग शान्त हो जाता है तो वह पुन: सीधा खड़ा हो जाता है, जो पौधे, वृक्ष, लता-गुल्म आदि हवा और पानीके

वेगसे सामने झुक जाते हैं और वेग शान्त होनेपर पुन: स्थिर हो जाते हैं, ऐसोंका कभी पराभव नहीं होता।

शील-विनय विजयका मूल है। अत: अपने जीवनमें विनयको प्रतिष्ठितकर अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहना

चाहिये। ऐसेमें तत्त्व बहुत दूर नहीं रहने पाता। भीष्मने पुनः कहा—युधिष्ठिर! इसी प्रकार राजाको चाहिये कि वह अपने तथा परपक्षके पराक्रमको भलीभाँति

समझकर नीतिके तत्त्वको समझनेका प्रयास करे। इस प्रकार समझकर जो व्यवहार करता है, उसकी कभी पराजय

नहीं होती। [ महा० शान्ति० ११३]

'गावो विश्वस्य मातरः' ( अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज ) गोसेवा प्रत्येक वर्णाश्रमी व्यक्तिका कर्तव्य है। प्रकृतिप्रदत्त शौर्य, क्रौर्य गुणोंके साथ ही हैं; श्रेणीसुधारके प्रशासन भी गोसेवाके प्रकल्प चला रहा है तो यह नामपर सिंहत्वको न तो बढ़ाया जा सकता है, न घटाया जा सकता है। इसी तरह गाय मनुष्यके शारीरिक, प्रशंसनीय है। हम हमेशा अपने प्रवचनके पूर्व एवं अन्तमें 'गोहत्या बन्द हो' का नारा लगाते हैं। गोहत्या मानसिक पापोंको नष्ट करने, पृथ्वीका पोषण करने-जैसे भारतमें बन्द हो, यह हमारे जीवनका लक्ष्य है। अनेकों गुणोंको अपने अस्तित्वमें धारण करती है तो यह

हमें हार्दिक वेदना है इस समाचारसे कि विश्वमें भारत अग्रणी गोमांस-निर्यातक देश है। यह कैसे हो सकता है कि जिस देशमें सर्वाधिक प्राचीन संविधान ऋग्वेदके रूपमें पाया जाता है, जिसमें अनेकश: यह वर्णित है कि गाय सर्वथा अवध्या है। भारत राम-

कृष्णका देश है। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं नंगे पैरोंसे चलकर गोचारण-लीला की। स्वयंको गोपाल, गोविन्द ख्यापित किया। अपने दिव्य-जन्मके उद्देश्योंमें एक गायकी रक्षा, सेवाको बतलाया। ऐसे श्रीराम-कृष्णका देश भारत गोमांसकी विश्वविख्यात मण्डी कैसे हो सकता है ? क्या इसका दायित्व शासनका नहीं है ? भारतीय संस्कृतिका प्रमुख आधार गाय है। लौकिक रूपमें भी भारतकी कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था होनेसे गोवंशको प्रश्रय दिया जा सकता है। आज भयंकर प्रदूषित होते वातावरणमें गाय ही हमारी रक्षा कर सकती है। दिनोंदिन पनप रहे भयंकर रोगाणु, बैक्टीरिया, जिनको अभीतक

मूलरूपमें ही होना आवश्यक है। जैसे सिंह आदि

जाना ही नहीं गया, इनका समाधान आधुनिक चिकित्सामें भी नहीं है। अत: आगे आनेवाले भयंकर प्रदुषित वातावरणसे अपनी रक्षाके लिये भी हमें गायके साथ जीना सीखना होगा। वरना आनेवाली महामारीसे हम नहीं बच सकेंगे। गायकी शताधिक श्रेणियाँ भारतमें पायी जाती हैं, जो कि अन्यत्र कहीं नहीं हैं। शासनको गायकी विभिन्न इसलिये चाहते हैं; क्योंकि रामराज्यमें कुत्तेको भी न्याय

देशी श्रेणियोंको चिह्नितकर अलग-अलग उनका मूलरूपमें ही संरक्षण करना चाहिये। श्रेणीसुधारके नामपर गायकी नस्लको बदलना गायको मारने-जैसा ही है, यह भी अपराधकोटि है। गाय चेतन प्राणी है और वह एक प्रकृतिप्रदत्त उद्देश्यसे प्रकट हुआ है, उसकी रक्षा उसके

गंगा और लक्ष्मी आमन्त्रणकी बाट जोह रही थीं, आमन्त्रण न मिलनेसे उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि उन्हें गायके शरीरमें स्थान दिया जाय, तबसे गायके गोबरमें लक्ष्मी और मुत्रमें गंगा रहती हैं। समस्त शुभकार्योंमें भूमिको प्रथम गायके गोबरसे लीपा जाता है। गोमूत्र मनुष्यके पापोंका नाश करता है। आयुर्वेदके अनुसार पेटके रोग, लीवरकी खराबी, कैंसरतकमें गोमूत्र उपयोगी है। यह वेदवचन है कि गाय निरपराध अदिति है, उसको मत मारो, यही बात बछड़े और बैलके लिये भी कही गयी है। हम चाहते हैं कुछ प्रदेशोंमें ही नहीं, समस्त भारतमें गोहत्या बन्द होनी चाहिये। उत्तर प्रदेशके किसी मन्त्रीने कहा था कि सरकार गोहत्या बन्द करके हिन्दूराज्य लाना चाहती है, जो मुसलमानोंके विरुद्ध है। इसपर हमने कहा था—'हम हिन्दूराज्य नहीं, रामराज्य स्थापित करना चाहते हैं। रावण, कंस, दुर्योधन, जरासंध हिन्दू ही थे; हम उनके जैसा राज्य नहीं चाहते। रामराज्य

कहा जा सकता है कि गायका अस्तित्वमात्र ही

कल्याणकारी है, इसके अस्तित्वसे छेड्छाड् करना

भयावह ही होगा। अब यह बात भी सुननेमें आ रही

है कि जर्सी गायका दुध विभिन्न रोगोंका कारण है।

हमारे शास्त्रोंके अनुसार भगवान्ने गायका निर्माण किया

है, उसके रोम-रोममें तैतीस करोड़ देवता विराजमान हैं।

मिला था तो गायको भी न्याय मिलेगा। मुसलमानोंको रामराज्यसे भयभीत नहीं होना चाहिये; रामराज्यमें उनको

किये बिना हमें मीठा दूध देती है। उसके गोबरसे खाद

गाय घास चरकर हिन्दू-मुसलमानका भेदभाव

भी न्याय मिलेगा।'

िभाग ९०

जो धेनु आयी न होती संख्या ५ ] बनती है, खेतीके लिये वह बैल देती है, स्वयं जीवनभर है, सड़कोंपर घूमती है, इसे काट देना चाहिये तो इसमें गायका क्या दोष है? दोष गायकी गोचरभूमि दूध देकर आगे भी दूधके लिये बिछया देती है। प्राचीन भारतमें व्यवस्था थी कि गायके लिये गोचरभूमि एवं हड़पनेवालोंका है या जिसकी गाय है उसका है, ग्राम एवं नगरमें भी सामूहिक गायोंके बैठनेके लिये भूमि दण्डनीय गाय नहीं है। गायकी कमाईसे जीवनयापन हुआ करती थी। किंतु आजकल उसे भी शासनने करनेवाले उसकी कमाईको हड़पकर उसी गायमें खर्च टुकड़ोंमें बाँट दिया है। वन विभाग गायोंको वनमें प्रवेश नहीं करते, उसको कटने भेज देते हैं। इसपर समाजको नहीं करने देता और गोचरभूमि भी नहीं, तो गायपर सोचना चाहिये। कुछ लोग इस तरह भी कह रहे हैं कि गम्भीर संकट है। किसान मशीनसे फसल काट रहे हैं, एक जगह ही गायको इकट्ठाकर उनकी सेवा की जाय, जिससे भूसा नहीं निकल रहा और भूसा जला भी दिया किंतु समस्त गायोंको एक जगह रखनेसे विपत्तिकाल जैसे-अतिवृष्टि, अकाल या स्थानविशेषपर फैलनेवाले जाता है, किसानोंद्वारा गायका खाद्य नष्ट हो रहा है। जिन प्रदेशोंमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध है, वहाँसे गायोंको रोगोंसे बहुत बड़ी हानिकी सम्भावना है। अत: घर-घर, काटने बाहर ले जाया जाता है। गोहत्या-निषेध कानून गाँव-गाँव, नगर-नगरमें गोसेवाका सन्देश पहुँचना चाहिये। भी अधूरे हैं, जिनमें यह कहा गया है कि १६ वर्ष बाद महाराष्ट्र सरकारने गोहत्या, गोमांसके विरुद्ध जब प्रतिबन्ध निरुपयोगी गाय, बैल काटे जा सकते हैं। इसकी आडमें लगाया तो तथाकथित नेताओंने यह कहा कि इससे उपयोगी भी काट दिये जा रहे हैं। गरीब मुसलमान सस्ते प्रोटीनसे वंचित हो जायँगे, किंतु बहुत-से लोभी डॉक्टर सर्टिफिकेट देकर यह उन्होंने यह विचार नहीं किया कि करोडों शाकाहारी प्रमाणित भी कर देते हैं। हम चाहते हैं मनुष्योंका गायोंके लोगोंका आहार गायका दूध है, उनका प्रोटीन गोदुग्ध साथ निरन्तर सम्बन्ध बना रहे। गायका दूध, दही, मठ्ठा है, क्या वे लोग इससे वंचित नहीं होंगे? चन्द मुट्टीभर सभी कुछ विशिष्ट है, मठ्ठेके सेवनसे जला आँव फिर लोगोंके लिये करोड़ों लोगोंकी अनदेखी अनुचित है। क्या यही धर्मनिरपेक्षता है? अस्तु! गायके समस्त दोबारा नहीं पनप सकता। गाय हिन्द्र-मुसलमान सभीकी माँ है। मुसलमानका भी नवजात शिशु अगर उसकी माँसे गुणोंको बतलानेका सामर्थ्य किसीमें नहीं; क्योंकि भविष्यमें विहीन हो जाय तो गायके दूधसे पल सकता है, होनेवाले किस रोगकी दवा गायसे प्राप्त गव्यसे सम्भव गोमांससे नहीं। कुछ लोग कहते हैं-गाय आवारा पशु नहीं होगी, यह अभीसे कैसे कहा जा सकता है? -जो धेनु आयी न होती-( श्रीपारसनाथजी पाण्डेय ) धेनु आयी न धरा धाम पे होती। तो उन्नित कृषी की बढ़ाई न होती॥ करते पैदल क्यों मुरली मधुबन में फिरा कैलासवासी। आके। तुम मुरारी ने गैया चराई न नन्दी की पायी न होती॥ होती॥ भी होती। फिरते दिलीप नन्दिनी को। रसातल में जलमग्न

सवारी जो नन्दी की पायी न होती॥

चराते न फिरते दिलीप निन्दिनी को।
तो रघुकुल की फिरती दुहाई न होती॥

चरण पूजने को न पाते जनकजी।
जो हल-बैल से सीता आयी न होती॥

जो गेया इनको सींगों पे उठायी न होती॥
भवसिन्धु से न होता तारण-तरण 'पारस'।
जो हल-बैल से सीता आयी न होती॥

साधकोंके प्रति— [ मृत्युके भयसे कैसे बचें?] ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

संसारके सम्पूर्ण दु:खोंके मूलमें सुखकी इच्छा है। राम मरे तो मैं मरूँ, निहं तो मरे बलाय। बिना सुखेच्छाके कोई दु:ख होता ही नहीं। ऐसा होना अविनाशी का बालका, मरे न मारा जाय॥

चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये-इस इच्छामें ही शरीर प्रतिक्षण मरता है, एक क्षण भी टिकता नहीं

सम्पूर्ण दु:ख हैं। मृत्युके समय जो भयंकर कष्ट होता है, वह भी उसी मनुष्यको होता है, जिसमें जीनेकी इच्छा

है; क्योंकि वह जीना चाहता है और मरना पड़ता है!

अगर जीनेकी इच्छा न हो तो मृत्युके समय कोई कष्ट

नहीं होता, प्रत्युत जैसे बालकसे जवान और जवानसे

बूढ़ा होनेपर अर्थात् बालकपन और जवानी छूटनेपर कोई कष्ट नहीं होता, ऐसे ही शरीर छूटनेपर भी कोई कष्ट

नहीं होता। गीतामें आया है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। देहान्तरप्राप्तिधीरस्तत्र न मुह्यति॥ तथा

(२।१३) 'देहधारीके इस मनुष्यशरीरमें जैसे बालकपन,

जवानी और वृद्धावस्था होती है, ऐसे ही देहान्तरकी प्राप्ति होती है। उस विषयमें धीर मनुष्य मोहित नहीं होता।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

'मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको

छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।'

शरीरमें अध्यास अर्थात् मैंपन और मेरापन होनेसे ही जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय होता है। कारण कि शरीर तो नाशवान् है, पर आत्मा अमर (अविनाशी) है

और आत्मा नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों रहता है, एक

क्षण भी बदलता नहीं। अत: जीनेकी इच्छा और मृत्युका भय न तो शरीरको होता है और न आत्माको ही होता है, प्रत्युत उसको होता है, जिसने स्वयं अविनाशी होते

हुए भी नाशवान् शरीरको अपना स्वरूप (मैं और मेरा) मान लिया है। शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है, प्रमाद है और प्रमाद ही मृत्यु है—'प्रमादो वै मृत्युः'

(महा० उद्योग० ४२।४)। प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही सुख-दु:खका भोका है—'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि

प्रकृतिजान्गुणान्।' (गीता १३।२१) पुरुष प्रकृतिमें

स्थित होता है-अविवेकसे। स्वरूपको शरीर और शरीरको अपना स्वरूप मानना अविवेक है। यह अविवेक ही दु:खका कारण है। तात्पर्य है कि मनुष्य नाशवान्को

इस कारण दु:ख होता है। अगर वह नाशवान्को अपना स्वरूप न समझे और स्वरूपको ठीक जान जाय तो फिर दु:ख नहीं होगा। शरीरमें जितना अधिक मैंपन और मेरापन होता है,

रखना चाहता है और अविनाशीको जानना नहीं चाहता,

मृत्युके समय उतना ही अधिक कष्ट होता है। संसारमें बहुत-से आदमी मरते रहते हैं, पर उनके मरनेका दु:ख, कष्ट हमें नहीं होता; क्योंकि उनमें हमारा मैंपन भी नहीं

है और मेरापन भी नहीं है। मृत्युके समय एक पीड़ा होती है और एक दु:ख होता है। पीड़ा शरीरमें और दु:ख मनमें होता है। जिस

िभाग ९०

और इसका विनाश कोई कर ही नहीं सकता— मनुष्यमें वैराग्य होता है, उसको पीड़ाका अनुभव तो **'विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति'** (गीता

२ Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma 🛊, MADE WITH LOVE By Avinash/Sha

मनुष्यको जैसी भयंकर पीड़ाका अनुभव होता है, वैसा पहुँच जाता है।
अनुभव वैराग्यवान् मनुष्यको नहीं होता। परंतु जिसको जिनका शरीरमें मैं-मेरापन नहीं मिटा है, उनको भी
बोध और प्रेमकी प्राप्ति हो गयी है, उस तत्त्वज्ञ, मृत्युमें, कष्टमें सुखका अनुभव हो सकता है, जैसे—
जीवन्मुक्त तथा भगवत्प्रेमी महापुरुषको पीड़ाका भी शूरवीर सैनिकमें वीररसका स्थायीभाव 'उत्साह' रहनेके

साधकोंके प्रति—

अनुभव नहीं होता। जैसे, भगवान्के चरणोंमें प्रेम होनेसे

संख्या ५ ]

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥ (रा॰च॰मा॰ ४।१०) बोध होनेपर मनुष्यको सच्चिदानन्द तत्त्वमें अपनी

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।

बालिको मृत्युके समय किसी पीड़ा या कष्टका अनुभव नहीं हुआ। जैसे हाथीके गलेमें पड़ी हुई माला ट्रटकर

गिर जाय तो हाथीको उसका पता नहीं लगता, ऐसे ही

बालिको शरीर छूटनेका पता नहीं लगा-

स्वाभाविक स्थितिका अनुभव हो जाता है, जिस तत्त्वमें कभी परिवर्तन हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं और हो

सकता नहीं। प्रेमकी प्राप्ति होनेपर मनुष्यको एक विलक्षण रसका अनुभव होता है; क्योंकि प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है।

बोध और प्रेमकी प्राप्ति होनेपर मृत्युमें भी आनन्दका अनुभव होता है। कारण कि मृत्युके समय तत्त्वज्ञ पुरुष एक शरीरमें आबद्ध न रहकर सर्वव्यापी हो जाता है और

भगवत्प्रेमी पुरुष भगवान्के लोकमें, भगवान्की सेवामें

फाँसीका हुक्म हुआ था, तब अपने उद्देश्यकी सिद्धिसे हुई प्रसन्नताके कारण उसके शरीरका वजन बढ़ गया था। स्त्रीको प्रसवके समय बड़ा कष्ट होता है। परंतु पुत्र–मोहके कारण उसको दु:ख नहीं होता, प्रत्युत एक सुख होता है, जिसके आगे प्रसवकी पीड़ा भी नगण्य

हो जाती है। लोभी आदमीको रुपये खर्च करते समय बड़े कष्टका अनुभव होता है। परंतु जिस काममें अधिक लाभ होनेकी सम्भावना रहती है; उसमें वह अपने पासके

कारण शरीरमें पीड़ा होनेपर भी उसको दु:ख नहीं होता, प्रत्युत अपने कर्तव्यका पालन करनेमें एक सुख होता है। उसमें इतना उत्साह रहता है कि सिर कट जानेपर भी वह शत्रुओंसे लड़ता रहता है। खुदीराम बोसको जब

रुपये भी लगा देता है और जरूरत पड़नेपर कड़े ब्याजपर लिये गये रुपये भी लगा देता है। लाभकी आशासे रुपये लगानेमें भी उसको दु:ख नहीं होता। तपस्वीलोग गर्मियोंमें पंचाग्नि तापते हैं तो शरीरको कष्ट होनेपर भी उनको दु:ख नहीं होता, प्रत्युत तपस्याका उद्देश्य होनेसे प्रसन्नता होती है। विरक्त पुरुषके पास स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि कुछ नहीं होनेपर भी उसको उनका

होता, प्रत्युत सुखका अनुभव होता है। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े धनी, राजा-महाराजा भी उसके पास जाकर सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं। इस प्रकार जब शरीरमें मैं-मेरापन मिटनेसे पूर्व भी मृत्युमें, कष्टमें सुखका अनुभव हो सकता है, तो फिर जिनका शरीरमें मैं-मेरापन

अभावरूपसे अनुभव नहीं होता। अत: उसको दु:ख नहीं

सर्वथा मिट गया है, उनको मृत्युमें दु:ख होगा ही कैसे? निर्मम-निरहंकार होनेपर दु:खका भोक्ता ही कोई नहीं रहता, फिर दु:ख भोगेगा ही कौन? अगर भीतरमें कोई इच्छा न हो तो सांसारिक

वस्तुओंकी प्राप्तिसे सुख नहीं होता और अप्राप्ति तथा

िभाग ९० विनाशसे दु:ख नहीं होता। इच्छा होनेसे ही सुख और इसीलिये जीते-जी अमर होनेके लिये इच्छाका त्याग करना दु:ख-दोनों होते हैं। सुख और दु:ख द्वन्द्व हैं, जिनसे आवश्यक है। शरीर 'मैंं' नहीं है; क्योंकि शरीर प्रतिक्षण बदलता मनुष्य संसारमें बँध जाता है। वास्तवमें सुख और दु:ख-दोनों एक ही हैं। सुख भी वास्तवमें दु:खका ही है, पर हम (स्वयं) वही रहते हैं। अगर हम वही न नाम है; क्योंकि सुख दु:खका कारण है—'ये हि रहते तो शरीरके बदलनेका ज्ञान किसको होता? संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।' (गीता ५।२२) बदलनेका ज्ञान न बदलनेवालेको ही होता है। शरीर अगर मनुष्यमें कोई इच्छा न हो तो वह सुख और 'मेरा' भी नहीं है; क्योंकि इसपर हमारा आधिपत्य नहीं दु:ख-दोनोंसे ऊँचा उठ जाता है और आनन्दको प्राप्त चलता अर्थात् इसको हम अपनी इच्छाके अनुसार रख कर लेता है। जैसे सूर्यमें न दिन है, न रात है, प्रत्युत नहीं सकते, इसमें इच्छानुसार परिवर्तन नहीं कर सकते और इसको सदा अपने साथ नहीं रख सकते। इस प्रकार नित्य प्रकाश है, ऐसे ही आनन्दमें न सुख है, न दु:ख है, प्रत्युत नित्य आनन्द है। उस आनन्दका एक बार जब हम शरीरको 'मैं' और 'मेरा' नहीं मानेंगे, तब अनुभव होनेपर फिर उसका कभी अभाव नहीं होता; उसके जीनेकी इच्छा भी नहीं रहेगी। जीनेकी इच्छा न क्योंकि वह स्वत:सिद्ध, नित्य और निर्विकार है। रहनेसे शरीर छूटनेसे पहले ही नित्यसिद्ध अमरताका अगर सब इच्छाओंकी पूर्ति सम्भव होती तो हम अनुभव हो जायगा। जीनेकी इच्छा पूरी करनेका उद्योग करते और अगर मृत्यूसे असत्का भाव (सत्ता) नहीं है और सत्का अभाव

बचना सम्भव होता तो हम मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करते। परंतु यह सबका अनुभव है कि सब इच्छाएँ कभी किसीकी पूरी नहीं होतीं और उत्पन्न होनेवाला कोई भी प्राणी मृत्युसे बच नहीं सकता, फिर जीनेकी इच्छा और मृत्युसे भय करनेसे क्या लाभ ? जीनेकी इच्छा करनेसे बार-बार जन्म और मृत्यु होती रहेगी तथा जीनेकी इच्छा भी बनी रहेगी!

आँखों में निश्छल प्रेम, हृदय से दया का सागर थी। चरणों से आशीष की गंगा, बहती निर्मल धारा थी॥

वाणी से असीम प्रेम की, लहरें आती जाती थीं।

कभी किसी का अहित न करना, प्रति दिन पाठ पढ़ाती थीं।।

तेरी कृपा से ही हे जननी, नृतन शरीर को पाया था।

( श्रीरंधीरकुमारजी )

माता तेरी करुण-कथा को, मैं कैसे लिख पाऊँगा।

तेरी ममता का अपार ऋण, मैं कैसे कभी चुकाऊँगा।

धरती सब कागज कर दूँ, पर तेरा अंत न पाऊँगा॥

तुम संसार को छोड़ चली हो, कहाँ सहारा पाऊँगा॥

ममता की मुरत थी माता मेरी, और करुणा की धारा थी।

आँचल में वात्सल्य प्रेम की, बहती अविरल धारा थी।।

तेरा जाना यूँ लगता है, जैसे सब कुछ एक सपना था। यथार्थ बदल सकता ही नहीं, यह सच तो निश्चित घटना था।।

अत: मृत्युसे भयभीत होना व्यर्थ ही है।

तेरे जाने से हे जननी, संसार अधूरा लगता है।

नहीं है—'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'

(गीता २।१६) सत् सत् ही है और असत् असत् ही है।

अत: न सत्का भय है, न असत्का भय है। अगर भय रखें

तो भी शरीर मरेगा और भय न रखें तो भी शरीर मरेगा।

मरेगा वही, जो मरनेवाला है; फिर नयी हानि क्या हुई?

हृदय विषाद से तपता है, घर-आँगन सूना लगता है।। माता किसे पुकारूँ कहकर, माँ का अब नहीं सहारा है।

माता तेरी प्रेम सरिता का, जग में कहाँ किनारा है।। तेरी बिगयों की शोभा क्या, सब तुम बिन सूना लगता है।

ममता के आँचल में पलकर, फूला नहीं समाया था।। घुटनों के बल चल-चलकर, तेरे समीप जब आता था।

अमृत सुधा का पान कराती, परमानन्द को पाता था॥

माता विहीन पुत्र को जग क्या, त्रिलोक भी सूना लगता है।।

माता तेरी चरण रज में, श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ मैं। दो ऐसा वरदान हे जननी जग में नाम कमाऊँ मैं॥

मानवताकी सफल योजना संख्या ५ ] मानवताकी सफल योजना ( स्वामी श्रीनारदानन्दजी सरस्वती ) मानवताका परिचय मानव-धर्मसे ही होता है, तथा देवदूतोंके रूपमें ऋषि-मुनियोंका अवतरण हुआ। शरीरकी आकृतिसे नहीं। उन्होंने अहिंसादि महाव्रतोंका स्वयं पालन करते हुए वर्णाश्रमकी मर्यादा-स्थापनाद्वारा मनुष्य-समाजको मार्ग धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। दिखाया। प्राणिमात्रको सुख-शान्ति मिली, दीर्घकालतक धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ समाजकी सुव्यवस्था चलती रही। केवल पंचमहाव्रतोंसे धैर्य, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, अथवा इनकी उपेक्षा करके वर्णाश्रम-धर्मसे समाजकी बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना-इन दस धर्मके लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको मनुने 'मानव' कहा है। सुन्दर व्यवस्था नहीं बनी। अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। जाति-पूर्वकालीन इतिहासको भली प्रकार दीर्घकालतक देशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्। मनन करनेसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाव्रतोंका पूर्ण आदर करते हुए समाजको किसी अंशतक सुख (योगदर्शन) सभी जाति, देश, कालमें मनुष्यमात्रने इसे स्वीकार मिल सकता है। वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी उपेक्षा करके किया है। इन्हीं महाव्रतोंको दृढ़ करनेके लिये तथा महाव्रतोंका सहस्रों वर्ष प्रचार किया गया, पर समाज व्यवहारको सुव्यवस्थित चलानेके हेतु राष्ट्र-निर्माणमें सुव्यवस्थित न हो सका और पंचमहाव्रतोंकी उपेक्षा परम उपयोगी समझकर वर्णाश्रम-व्यवस्थाको आदरसहित करके केवल वर्णाश्रमधर्म भी समाजको सन्तुष्ट न कर पालन करनेमें बहुत कालतक ऋषियोंने प्रयास किया है। सका। पंचमहाव्रतका और वर्णाश्रमधर्मका शास्त्रविधिसे प्राचीन इतिहाससे बोध होता है कि वर्णाश्रम-पालन करनेपर ही मानवताका पूर्ण विकास हो सकता व्यवस्था-पालनमें उपर्युक्त महाव्रतोंकी जब-जब उपेक्षा है। शास्त्रका विधान मनुष्यमें पशुता और दानवताका की गयी, तब-तब मानव-समाजमें असंतोष, विग्रह, परिहार करता हुआ मानवताके पूर्ण विकासरूप देवत्वतक दुर्व्यवस्था तथा क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उसे पहुँचानेमें समर्थ है। तत्त्ववेत्ताओंने जिस मनुष्यमें पूर्ण मानवताका विकास अवैदिक मतोंका प्रचार हुआ। कुछ कालतक सुख-पाया, उसे महापुरुष, पुरुषोत्तम आदि विशेषणोंसे सम्बोधित शान्तिके आभासका अनुभव हुआ तथा वर्णाश्रम-धर्मरहित सामान्य धर्मोंका समुदायने आश्रय लिया, पर किया। संत, साधु, महात्मा शब्दोंसे भी व्यक्त किया है। न वह अवैदिक धर्म सम्पूर्णतया व्यापक ही हो सका, श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी, आसुरी न दीर्घकालतक स्थिर ही रहा। अपितु उसने सैकड़ों सम्पद्के लक्षणोंद्वारा मानवता और दानवताका अन्तर पन्थ, स्वेच्छाचारी वर्ग एवं भिन्न-भिन्न जातियोंको जन्म समझाया है। श्रीरामचरितमानसमें परम भागवत गोस्वामी दिया। कलह, अशान्ति बढ़ गयी; स्वेच्छाचारिता, पाखण्ड, तुलसीदासजीने संत, असंतके लक्षणोंद्वारा दोनों पक्षोंका नास्तिकताका घोर प्रवाह चला। समयके परिवर्तनने निरूपण किया है। समाजको भोग-लिप्सासे असन्तुष्ट, किंकर्तव्यविमृढ बना भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने मानवताके पूर्ण

विकासके लिये वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी रक्षाका आदर्श

उपस्थित किया। केवल प्रवचनसे नहीं, अपितु अधिक-

से-अधिक लोकसंग्रहके अर्थ—स्वधर्मका पालन किया।

दिया। तत्त्वदर्शियोंका अभाव होनेसे मानव-समाजको

पथ-प्रदर्शन न मिल सका। जनता दुखी होकर अखिल

सृष्टिके संचालक दैवी शक्तिसे प्रार्थना करने लगी। देव

कौरव भी चचेरे भाई थे। कौरवों, पाण्डवोंका विपरीत उसी प्रकार लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णभगवान्ने जिनको स्वयं कर्म करनेकी आवश्यकता न थी, लोकसंग्रहके उद्देश्य होनेसे भगवान् श्रीकृष्ण भी नीति और प्रकृतिके निमित्त स्वयं धर्ममर्यादाका पालन किया और समुदायसे कारण समन्वय न करा सके। यदि दोनों समाज एकमें करवाया। जिससे यह प्रतीत होता है कि जीवन्मुक्त मिलकर रहते तो पाण्डवोंका विनाश हो जाता। वेश्या

हैं और सफल होंगे। आचरणकी उपेक्षा करके केवल बृहस्पतिके समान वक्ता होकर भी सुमधुर प्रवचनद्वारा ही जनताको सत्कर्मकी शिक्षा देनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता। भले ही उपदेशसे सात्त्विक भाव अंशत: जाग्रत् हो जायँ। शास्त्रविधानके आधारपर जीवन्मुक्तोंद्वारा मानवताकी शिक्षा कभी विफल नहीं हो सकती। दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। महत्सङ्गस्तु

तत्त्ववेत्ता ही स्वधर्मका पालन करके मानव-समाजको

मानवताकी शिक्षा देनेमें समर्थ हुए हैं, सफल हो रहे

परमात्मा अचल है, सनातन है। सिच्चदानन्दघन, अपरिवर्तनशील, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय जिसमें आरोपित है, वही अक्षय सुखका भण्डार मनुष्योंके लिये जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। विषयभोगमें सुख नहीं। नश्वर पदार्थ परिणाममें दु:खदायी होनेसे वैराग्य करनेयोग्य हैं। परमात्मा ही अक्षय सुख-भण्डार होनेके कारण सब जीवोंको अमर सुख प्राप्त करा सकता है। आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥ सो सुखधाम राम अस नासा । अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

ध्येय मानकर आसुरी गुण-कर्म-स्वभावका आश्रय लेकर अपना उत्थान करता था। कभी-कभी परस्परमें टकरानेसे देवासुर-संग्राम हो जाता था। महाभारत तथा लंकाकाण्ड इसीके उदाहरण हैं। एक ही वंशमें दैवी, आसुरी प्रकृतिके कारण ही दो समुदायोंका बन जाना स्वाभाविक था। एक समाजमें

एक समाज अपनी उन्नित करता था। दूसरा विषयभोगको

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंध, भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥ (नारदभक्तिसूत्र) यदि किसी मनुष्यको अपनी दानवता दु:खदायी प्रतीत हो, ग्लानि हो तो उसे मानवताके सच्चे पुजारी, केवल साधु-वेशधारी ही नहीं, अपितु साधुप्रकृतिवालोंकी शरणमें जाना चाहिये। जैसे एक रत्नाकर डाकूको जब अपनी दुश्चरित्रता, दानवतापर ग्लानि हुई, उसी समयसे उसने संतोंकी शरण ली, तप किया और त्रिकालदर्शी, महाकवि, महामानव, महर्षि वाल्मीकिके पदको प्राप्तकर प्राचीन कालके इतिहासमें दैवी आचरणोंके आधारपर शास्त्रोक्त विधिसे ब्रह्मप्राप्तिके उद्देश्यका आश्रय लेकर

और पतिव्रताकी साझेकी दुकान चलानेमें वेश्याकी कोई

क्षिति नहीं, पितव्रताकी ही क्षिति है। संत-कसाईके

साझेकी दूकानमें संतकी क्षति है, कसाईकी नहीं; भेड़

और भेड़ियाको एक कमरेमें रखनेसे भेड़को भय है,

भेड़ियाको नहीं। ऐसे ही दैवी गुणोंके पुरुषको क्षति है,

तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

आसुरी वृत्तिवालेको नहीं।

जाके प्रिय न राम-बैदेही।

भाग ९०

दो उद्देश्य, दो विधान-पालन नहीं हो सकते। रावणका भगवान् श्रीरामको आशीर्वाद देने योग्य बन गये। वंशिंक्षि<del>एंत्रम कुरिक्दुराय केला प्रातीर</del>ाक्षः/<del>पीढढ़ कुर्वारी</del>harma भूगसिन् पिस्तिस् । सिन्ति श्रू E BY Avinash/Sha

मानवताकी सफल योजना संख्या ५ ] किया है— अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः। भुतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ कोई भी मनुष्य अपने दुश्चरित्रोंसे दु:खित ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। होकर मेरी शरणमें आता है तो मैं उसको शीघ्र ही प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥ साधुवृत्तिवाला बनाकर सदैवके लिये सुखी करके जीवन (श्रीमद्भा० ११।२।४५-४६) कृतार्थ कर देता हूँ। 'प्राणिमात्रमें भगवद्बुद्धि रखकर उस विराट् देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥ भगवान्को सर्वत्र देखना मानवताका सत्यस्वरूप है। ईश्वरसे प्रेम, भक्तोंसे मैत्री, अज्ञानीपर कृपा, दुष्टोंके प्रति सभी शास्त्रोंका यही सार है कि मानवताका विकास करो। दानवताका विनाश करो। रजोगुण, तमोगुण उपेक्षाभाव रखना मानवताका आंशिक रूप है।' अत: दानवताको बढ़ानेवाले हैं, सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मानवताका अपनी वृत्तिको सुन्दर बनानेके हेतु आन्तरिक विकारोंकी निवृत्ति करना चाहिये। हृदयकी सुन्दरता सच्ची मानवता विकास होता है। भागवतके एकादश स्कन्धमें मानवता बढानेके दस साधन बताये हैं-है, शरीरकी सुन्दरता नहीं। काम-क्रोधादि षट् विकार मनुष्यको दानवताकी ओर प्रवृत्त करते हैं, इनकी निवृत्ति आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च। और दैवीसम्पद्के लक्षणोंकी वृद्धि मानवताके विकासमें ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥ सहायक है। (श्रीमद्भा० ११।१३।४) शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, समाजका नेतृत्व तत्त्ववेत्ता ही कर सकते हैं; मन्त्र, संस्कार—ये दस वस्तुएँ सात्त्विक, राजस, तामस क्योंकि वे राग-द्वेषसे रहित होते हैं-जिस गुणवाली होती हैं, उसी गुणको बढ़ाती हैं। रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियश्चरन्। अत: सात्त्विक समाज एकत्रित करके मानवताके आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ सद्गुणोंद्वारा एकताका संगठन करे, जिससे समाज (गीता २।६४) शनै:-शनै: अपनी दुर्वृत्तिका दमन करके सत्त्वगुणी रागी पुरुष गुण न होते हुए भी आसक्तिके बननेका प्रयास कर सके। कारण गुण देखता है। द्वेषदृष्टिवाला पुरुष दोष न होते जो व्यक्ति धर्म, ईश्वरसे विमुख होकर समाजकी हुए भी दोष देखता है। अत: रागद्वेषरहित होकर सेवामें लगे हैं, उनमें भी मानवताके लक्षण मिलते हैं। व्यावहारिक क्रिया करे। शुद्ध हृदयवाले पुरुषोंके संगठनमें जो ईश्वर, धर्मको माननेवाले समाजकी सेवाको भूले हुए देर नहीं लगती। राग-द्वेष-युक्त पुरुषोंका संगठन दु:साध्य हैं, उनमें भी कुछ अंश मानवताके पाये जाते हैं। यदि है, अत: एक विचारवाले सभी सात्त्विक समाजका ईश्वर, धर्मको माननेवाले जनताको जनार्दन समझकर संगठन मानवताके आधारपर हो सकता है। यह ध्रुव समाज-सेवाको भगवत्सेवाका अंग समझें और समाजसेवी सत्य है। ऋषियोंका यह उदार सिद्धान्त प्राणिमात्रके पुरुष ईश्वर-स्मरणको समाज-सेवाका अंग समझें तो लिये हितकारी है-विश्वशान्ति होनेमें अधिक समय नहीं लगेगा। इसीसे सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। भागवतकार श्रीव्यासजीने परम पूजाके रहस्यको व्यक्त सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

जीवनका सच्चा लाभ ( श्रीबरजोरसिंहजी )

संसारका प्रत्येक प्राणी जीवनमें सदा लाभ-ही-केवल सांसारिक धन कमा रहे हैं, जिसे अन्तमें स्वयं ही लाभ चाहता है, अपनी हानि तो कोई चाहता नहीं, परंतु

देखा यह जाता है आम तौरपर आदमी धनके लाभको ही वास्तविक लाभ समझते हैं। जिन्होंने किसी भी

तरहसे छल, कपट, बेईमानीसे धनका संग्रह कर लिया

है, वे अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, अपने-आपको

नम्बर एकका आदमी मानते हैं। इसके विपरीत ईमानदारीसे पैसा कमानेवालों और कम पैसोंमें अपना गुजारा

करनेवालोंको आजके समाजके तथाकथित सम्भ्रान्त लोग पिछडा और दिकयानुसी कहते हैं। विडम्बना यह

कि आज जो झूठ बोलता है, छल-कपट करता है, वह हर जगहपर कामयाब होते देखा गया है। आज तो ऐसा

समय आया है, घोर कलियुगका कि 'साँचे को फाँके पड़ें लाबर लड्ड खाय।' वाली कहावत लागू हो रही

है। जो चापलूसीसे धन अर्जित कर लेते हैं, वे कहते फिरते हैं कि मैंने ऐसा किया, मैंने वैसा किया, मैंने उसको मुर्ख बनाया, मैंने उसका धन छीना। वे इस

तरहकी बातें करते देखे जाते हैं, पर यहाँपर एक सवाल खड़ा होता है कि क्या धन कमा लेना ही जीवनका वास्तविक लाभ है ? जिन्होंने सन्तों-सत्पुरुषोंकी संगति

नहीं की, वे वास्तविक लाभको नहीं समझ सकते। आइये अब देखें कि वास्तविक लाभ क्या है। लाभकी परिभाषा बताते हुए सन्तशिरोमणि तुलसीदासजी

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें कह रहे हैं कि-लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना॥ हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥ जिसकी महिमा वेद-सन्त और पुराण गायन करते

हैं, उस प्रभुकी भक्तिके समान क्या कोई अन्य लाभ है ? अर्थात् नहीं और हे भाई! मनुष्यशरीर पाकर भी प्रभुका भजन न किया जाय जगत्में, क्या इसके समान कोई

दूसरी हानि है? अर्थात् नहीं है।

मिट्टी हो जाना है, इस धनसे क्या लाभ! परलोकमें तो यह धन साथ नहीं जाता। संसारी मनुष्योंकी यह दशा देखकर सत्पुरुष गुरु श्रीअर्जुनदेवजी महाराज कहते हैं

कि— 'रे मूड़े लिह कउ तूँ ढीलादीला तोटे कउ बेगि धाइआ॥' 'हे अज्ञानी मनुष्य। जीवनके सच्चे लाभके लिये

तू टालमटोल और आलस्य करता है, परंतु आत्मिक हानिकी ओर शीघ्र दौड़-दौड़कर जाता है।'

मनुष्यशरीररूपी पूँजी अथवा श्वासोंकी पूँजी जो परमपिता परमात्माने हमको दी है, वह तो निरन्तर हाथोंसे जा रही है, परंतु उस पूँजीके बदले आप कौन-

सा लाभ ले रहे हैं, इसपर जरा गम्भीरतापूर्वक विचार कीजियेगा। इस पूँजीके बदले आप सच्चा लाभ लेकर

संसारसागरसे जाओगे तो परमपिता परमात्माकी कृपा प्राप्त करोगे और जन्म-मरणके चक्करसे हमेशा-हमेशाके लिये छूट जाओगे, परंतु इस पूँजीके बदले संसारका धन बटोरते रहोगे तो धन तो साथ जायगा नहीं,

बहुमूल्य शरीर भी व्यर्थ हो जायगा। इतिहास गवाह है कि धन कभी किसीके साथ नहीं गया, मुद्री बाँधकर आये थे और खाली हाथ जाना पडेगा। आप कुछ लेकर जाना चाहते हो या खाली हाथ जाना चाहते हो, ये

निर्णय तो आपको ही करना है। भजन, भक्ति, रामनाम

और किये गये शुभ कर्मका सच्चा धन ही अन्तकालमें

सहायता करेगा और परलोकमें साथ जायगा, सांसारिक धन तो यहीं छूट जानेवाला है। सन्त सहजोबाईने स्पष्ट यह अवसर दुरलभ मिलै, अचरज मनुषा देह।

िभाग ९०

(गुरुवाणी)

लाभ यही सहजो कहै, हरि सुमिरन करि लेह॥ हमारे सन्त महापुरुषोंका यह कहना है कि आप धन जरूर कमाओ; क्योंकि धनके वगैर कुछ भी होनेवाला

इस मूल्यवान् शरीरसे अथक परिश्रम करके जो

कहा है कि-

संख्या ५ ] खतरनाक चोर इसको भी एक दिन नष्ट हो जाना है। नहीं, धन कमाना भी अत्यन्त आवश्यक है, पर धन कमानेमें किसीका गला मत काटो, किसीके पेटमें छुरी एक दूसरे श्लोकमें वे कहते हैं-मत मारो, दूसरेका हक मत छीनो, अपनी मेहनतकी कमाईमें प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं सन्तोष करो, हरदम इस बातका ध्यान रखो कि यह धन न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्। साथ नहीं जायगा। भक्तिका सच्चा धन एकत्र करते रहो, सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं उसीसे हमें सच्चा सुख और शान्ति मिलनेवाली है। कल्पं स्थितास्तन्भृतां तनवस्ततः किम्॥ श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें गोस्वामी तुलसीदासजी श्लोकका भाव यह है कि संसारभरका वैभव मिल कहते हैं कि 'जगत्में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि जाय, शत्रुओंको यदि परास्त कर दिया जाय या बहुत-से हैं, जो भक्तिरूपी मणिके लिये भलीभाँति यत्न किया मित्र बना लिये जायँ अथवा चिरायुष्य प्राप्त हो जाय तो भी क्या, व्यक्ति कुछ भी कर ले, यदि उसने जीवन-करते हैं'— मरणसे मुक्ति पानेके प्रयास नहीं किया तो सब व्यर्थ है। चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥ राजा भर्तृहरि एक अन्य श्लोकमें कहते हैं— (रा०च०मा० ७।१२०।१०) महाराज भर्तृहरि अपनी वियोगावस्थामें अपने अद्वितीय जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं ग्रन्थ भर्तृहरिशतकके वैराग्यशतकमें लिखते हैं— एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्। यतो मेरुः श्रीमान् निपतित युगान्ताग्निवलितः भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं व्यक्तज्योतिर्न वान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम्॥ समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरमकरग्राहनिलयाः। धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता अर्थात् तनपर चिथडा पहना या पीताम्बर धारण शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले॥ किया, इससे क्या फर्क पडता है। घरमें एक स्त्री हो या अनेक, हाथी-घोड़े हों या न हों, भोजन रूखा-सूखा अर्थात् इस संसारमें सदा कोई वस्तु नहीं रहती। स्वर्णका भण्डार सुमेरुपर्वत प्रलयकी अग्निमें भस्म हो खाया या तर माल खाया, इन बातोंसे कोई फर्क नहीं जाता है। समुद्र सूख जाते हैं। विशाल पर्वतोंका पड़ता, लेकिन यदि मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं किया तो बोझ उठानेवाली पृथ्वी भी रसातलमें चली जाती है जीवन तो बेकार ही चला गया। जीवनका सच्चा लाभ तो मनुष्य इस क्षणभंगुर शरीरका क्यों गर्व करता है, तो मिला ही नहीं। -खतरनाक चोर-रास्तेमें पड़े हुए हड्डीके टुकड़ेसे अपने-आपको बड़ी सावधानीसे बचानेवाला मनुष्य चमड़ेसे मढ़ी हुई हिंडुयोंका स्पर्श करनेके लिये कितना पागल हो जाता है? इस शरीरमें आड़ी-तिरछी हड्डियाँ जमायी गयी हैं और मांस-पिण्ड रखकर उन्हें नाड़ियोंसे बाँधा गया है। बादमें ऊपरसे सुन्दर चमड़ेका आवरण चढ़ाया गया है। इस शरीरसे निकलनेवाले किसी भी पदार्थको देखनेके लिये मन तैयार नहीं होता है, फिर भी उसके स्पर्शके लिये मन कितना अधिक पागल हो जाता है? याद रखो, ये इन्द्रियाँ चोरसे भी ज्यादा खतरनाक हैं। चोर जिसके घरमें रहता है, उसके यहाँ तो कम-से-कम चोरी नहीं ही करता है, किंतु इन्द्रियाँ आत्माके घरमें रहकर भी उसका विवेकरूपी धन लूट लेती हैं और उसे गर्तमें गिरा देती हैं। अतः अपनी आत्माके विवेकरूपी धनको लूटनेके लिये तैयार बैठी इन्द्रियोंसे हमेशा सावधान रहो। —गोलोकवासी महात्मा श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

चौधरीजीका मायरा कहानी-( श्रीरामेश्वरजी टांटिया ) हिन्दुओंमें बहनके पुत्र या पुत्रीके विवाहपर भाई आये हैं। बाईके लिये हीरे-मोती-जड़े गहने एवं चुनरी, भात (मायरा) लेकर बहनके यहाँ जाता है। यह प्रथा सास-ननदके लिये कीमती वस्त्र, यहाँतक कि नौकर-हजारों वर्षोंसे चली आ रही है। यदि भाई न हो, तो चाकरोंके लिये सोनेकी कण्ठी और कपडे। पीहरके पड़ोसी या गाँवके किसी व्यक्तिद्वारा चुनरीका ऐसे अवसरोंपर ससुरालवाले तरह-तरहकी फरमाइशमें पीछे नहीं रहते। अनेक प्रकारकी कीमती चीजोंकी माँग नेग किया जाता है। भातके नेगचारके बिना विवाहके आगेके कार्यक्रम रुके रहते हैं। पेशकर नीचा दिखानेकी चेष्टा करते हैं, परंतु मुनीमजी पन्द्रहवीं शताब्दीकी घटना है। जूनागढ़के पास तो मानो सारी परिस्थितियोंके लिये पहले ही से तैयारीके अंजार नामका एक कसबा है। यहाँ नरसी मेहताकी पुत्री साथ आये थे। सबकी फरमाइशें पूरी कर दी और वापस नानीबाईकी ससुराल थी। नानीबाईकी पुत्रीका विवाह चले गये। था। परम्पराके अनुसार जूनागढ़से मेहताजी भात लेकर इसके बाद मेहताजी इकतारेपर केदार रागमें भजन आनेवाले थे, परंतु इसके लिये उनके पास साधन नहीं गाते हुए पुत्रीकी ससुराल पहुँचे, साथमें साधु-मण्डली थे। वे भगवद्भक्त थे, जो कुछ था भी, साधु-सन्तोंकी भी थी। समधियानेवालोंने उनका ससम्मान स्वागत किया सेवा-आवभगतमें खर्च कर दिया और उन्हींकी मण्डलीमें और बताया कि मुनीमजीके हाथों आपने जो चीजें भेजी रहकर हरिभजनमें मग्न रहते। परिवारके लोगों तथा थीं, वे मिल गयीं, परंतु वे चले गये। कह रहे थे, जरूरी

काम है।

किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता ? आखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी बैलगाड़ीपर अंजारकी ओर चल पड़े। साथमें साधु-मण्डली भी हरि-कीर्तन करती जा रही थी। उधर नानीबाईके ससुरालवाले मेहताजीके स्वभावसे परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। बाईको ताने देते कि मेहताजी बहुत बड़ा भात लेकर आ रहे हैं। बाईके पास चुपचाप सहनेके अलावा और कोई उपाय नहीं था। वह उदास रहती और पिताके आनेकी राह देखती। पहलेसे ही शिथिल था। हुकूमत कम्पनी सरकारकी

इसी बीच एक दिन लोगोंने जूनागढ़की तरफसे

मित्रोंको अंजार साथ चलनेके लिये उन्होंने आमन्त्रित

उत्तरमें मेरठ, हापुड़, मुक्तेश्वर एवं सहारनपुर कसबोंमें उन दिनों गुज्जर पठानोंकी जागीरदारियाँ थी। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसुलीका अधिकार अँगरेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीको हो गया था, फिर भी इन जागीरदारोंमेंसे बहुतोंके सम्बन्ध एवं रसूक, कमोबेश दिल्लीके बादशाहसे कायम थे। सैकड़ों सालसे चले आये आपसी ताल्लुकात बाइज्जत बरकरार थे।

दुसरी घटना-१९वीं शताब्दीकी है। दिल्लीके

अँगरेज, सिक्खोंसे युद्धमें उलझे थे। मुगल-शासन

चलती थी, पर युद्धके कारण वह शासनको सुव्यस्थित

िभाग ९०

गाजे-बाजे और रथोंकी घण्टियोंकी आवाज आती सुनी। नहीं कर पा रही थी। इसीलिये इन जिलोंके ताल्लुकों उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोडी देरमें सचमुच ही और जागीरोंमें चोरी-डकैती और राहजनीका जोर था। बेशकीमती साजो-सामान लिये मेहताजीके मुनीम आ यहाँतक कि कुछ बडे जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष पहुँचे। अपना परिचय साँवरियाके नामसे दिया और रूपसे डकैतियाँ डलवाते या इन्हें संरक्षण देकर लूटके Hindhism Discord Server https://dsc.og/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या ५ ] चौधरीजीव	•
**************************************	
मुक्तेश्वरके जागीरदार थे गुज्जर चौधरी रूपरामजी।	चिन्ता बढ़ती गयी। अगर भात नहीं आया, तो फिर क्या
हालाँकि उनकी सालाना आमदनी डेढ़-दो लाख ही थी,	हाल होगा। इज्जत मिट्टीमें मिल जायगी, क्या मुँह
परंतु सस्तीका जमाना था, रुपयेका ढाई-तीन मन गल्ला	दिखायेंगे? इसी उधेड़बुनमें थे कि हापुड़की ओरसे
तथा दस सेर तेल और तीन सेर घी मिलता था। अच्छी	बाजेकी आवाज आती सुनाई पड़ी। छोटूकी जान-में-
नस्लके घोड़ेकी कीमत मात्र बीस-पचीस रुपये थी।	जान आयी। जल्दी-जल्दी तैयारीकर वे सब अगवानीके
चौधरीका रोबदाब था, ठाठ-बाटसे रहते थे। दरवाजेपर	लिये आगे बढ़े। उतावलेपनमें एक-दूसरेको पहचान न
दो हाथी झूमते, अस्तबलमें २५ घोड़े, २० रथ और	सके। छोटू आगन्तुकोंको सीधा अपने घरतक ले आया।
पछाही बैलोंकी कई जोड़ियाँ। सैकड़ोंकी तादादमें निजी	तब चौधरी साहबने पूछा, 'हमारे हरकारे और
सिपाही भी थे।	तम्बू किधर हैं? तुम हमें कहाँ ले आये?' अब तो
उनकी जागीरकी खिराज पिछले पचास वर्षोंसे	छोटूको काटो तो खून नहीं। उसके होश गुम हो गये।
शाही हुक्मनामेके मुताबिक आला शाहजादेके पान-	डरके मारे काँपने लगा और जमीनपर लोटकर कहने
खर्चके लिये लगी हुई थी। अब हालाँकि वे बूढ़े होकर	लगा—'बापजी! गजब हो गया, मेरी लड़कीकी शादी
बादशाह हो गये थे और कम्पनीके साथ हुई शर्तोंके	है, बारात आ चुकी है, हापुड़से भतई आनेवाले थे। मैंने
मुताबिक खिराजका हक उनका न रहा, वे महज	समझा कि परेशानीसे मेरा सिर फिरा था। गलतीसे
पेंशनके हकदार रहे, फिर भी चौधरी रूपराम प्रतिवर्ष	आपको पहचान न सका। भतई समझकर आपको यहाँ
खिराजकी रकम लेकर, गाजे-बाजेके साथ मुक्तेश्वरसे	ले आया। आपकी परजा हूँ मालिक! अनजानेमें गलती
बादशाह सलामतकी खिदमतमें नजर करने खुद अपने	हो गयी, माफ करें।' उसकी घिग्घी बँधी थी।
साथ ले जाते। साथमें हाथी, घोड़े, रथ, तम्बू–कनात	चौधरीको सफरकी थकान थी। एक बार तो गुस्सा
और हथियारबन्द सिपाही रहते। चालीस मीलके सफरमें	आया, त्योरी चढ़ आयी। फिर भी चुप रहे, सोचने
तीन दिन लग जाते। धर्मशालाएँ या सरायें कम थीं। जहाँ	लगे—बेचारेका क्या कसूर। भातका समय बीत रहा था,
भी ठहरते, तम्बू और छोलदारियाँ लग जातीं।	बारात शायद नाराज होकर लौट जाती। ऐसेमें हर
हर सालकी तरह वे दिल्ली जा रहे थे। फसल	बेटीका बाप होश खो देगा। उन्होंने यह कहते हुए
अच्छी हुई थी। किसान और रिआया (प्रजा) सुखी थे।	अपनी खामोशी तोड़ी—'छोटू! हमने सुना कि रास्तेमें
चौधरी पूरे हुजूमके साथ दिल्लीके लिये खाना हुए।	कंजरोंने हापुड़से आये कुछ लोगोंको लूटा है, हो
दूसरे दिनका मुकाम शाहदराके लिये तय था।	सकता है, कहीं भतई और उनके आदिमयोंपर मुसीबत
तीसरे दिनकी सुबहतक दिल्ली पहुँचनेकी खबर भेज दी	पड़ी हो। खैर, तुम फिक्र मत करो। तुम्हारी बेटी, सो
गयी थी।	मेरी बेटी। सारे नेगचारकी तैयारी करो। जनवासेमें खबर
संयोगकी बात है। जिस दिन चौधरीका पड़ाव	भेज दो कि भर्तई भात ले आये हैं, वे बारात लेकर आ
शाहदरामें था, उसी दिन वहाँके छोटू मेहतरकी पुत्रीकी	जायँ।
शादी भी थी। हापुड़से भतई आनेवाले थे। बिना भातके	बादशाहकी नजरके लिये लायी हुई सारी कीमती
आगेके नेगचार रुके हुए थे। जनवासेमें सारे बाराती	चीजें भातमें दे दी गयीं। छोटूकी पत्नीको जब चौधरीजी
बुलावेकी बाट जोह रहे थे। शामका झुटपुटा हो गया।	चुनरी ओढ़ाने लगे, तो उस गरीबकी आँखोंमें आँसू
भतई अबतक आये नहीं। छोटू और उसकी पत्नीकी	उमड़ पड़े।
· ~	• •

चौधरीजीने छोट्रकी बेटीके हाथमें पचीस अशर्फियाँ खिदमतमें पेश करनेका फख्र हासिल करेंगे।' रखते हुए सुखी-सौभाग्यवती रहनेका आशीर्वाद दिया। बादशाहने मुसकराकर कहा—'इलाकेके शातिर दुल्हेको सोनेके कड़े, पाँचों कपड़े और एक सोरठी चोर-डाकू भी आपका रुतबा मानते हैं, लिहाजा ताज्जुब घोडी दी। वरके पिताको मिरजई और चार अशर्फियाँ। है कि डकैतीका यह वाकया आपके साथ कैसे मुमकिन हर बारातीको चाँदीकी एक-एक कटोरी। सारे कसबेमें हुआ?' चौधरीके भातकी चर्चा बढ़-चढ़कर फैल गयी। कोई चौधरीजीने सारी घटना सच-सच बता दी। बादशाह निन्दा करता, तो कोई प्रशंसा। खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अन्तिम मुगल सम्राट् दूसरे दिन चौधरी दिल्ली पहुँचे। बादशाह सलामतकी बहादुरशाह केवल नाममात्रके बादशाह रह गये थे, किंतु वे अपने बाप-दादोंसे कहीं ज्यादा दिरयादिल थे। स्वयं ओरसे सारा इन्तजाम था। अगवानीके लिये शहरका नाजिम खुद हाजिर था। दोपहरके वक्त जब दीवान-ए-भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—'चौधरी रूपराम! खासमें उनके नामकी तलबी हुई, तो खिराजकी रकमकी आपने जो कुछ भी किया, उससे मा-बदौलत बेहद खुश

बाबत चौधरीजीने अर्ज किया कि 'हुजूर! हमेशाकी तरह गाँवसे पूरी रकम लेकर ही चला, पर सफरमें कुछ हादसोंने इत्तफाक बना दिया कि पासमें कुछ भी न बचा। खैर, हम कुछ दिन फिलहाल यहाँ रुकेंगे और इस दरम्यान अपने इलाकेसे रकम मँगाकर आपकी

## मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापित) बन्धन, मुक्ति, भिक्त—सोचना, मानना, स्वीकार मोहके नुकसान—दु:ख, चिन्ता, अशान्ति, मानसिक

करना, भाव (भावना) रखना—इन सबका समान अर्थ है। जो कुछ मेरे पास है, वह मेरा है और मेरे लिये है—

ऐसा सोचना ही बन्धन है; वह मेरा नहीं है और मेरे लिये नहीं है—ऐसा सोचना ही मुक्ति है; वह प्रभुका है और प्रभुके लिये है—ऐसा सोचना ही भक्ति है। केवल सोचनेमात्रसे आप बँध जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं, भक्त

बन जाते हैं। **मेरे पास क्या है**—आपके पास केवल तीन चीजें
हैं—शरीर, परिवारजन-पति, पत्नी, सन्तान आदि; निजी

हैं—शरीर, परिवारजन-पित, पत्नी, सन्तान आदि; निजी सामान-सम्पत्ति। इस विशाल संसारमें केवल इन तीन चीजोंके बारेमें ही आपके मनमें यह भावना रहती है— ये मेरी हैं, मेरे लिये हैं। इस भावनाका नाम है—मोह

या ममता।

जाय। छोटू मेहतरकी बेटीको दिया गया भात हमारी तरफसे समझा जाय और भतई—हम और तुम दोनों।' [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

हैं। हम नाजिमको हुक्म फरमाते हैं कि खिराजकी पूरी

रकम वसूलीके बतौर खजानेकी बहियोंमें जमा लिख दी

भाग ९०

तनाव, निराशा, डिप्रेशन आदिका मूल कारण है मोह। मोहसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि विकारोंका जन्म होता है, जो नरकके दरवाजे हैं। मोहसे ही अहंकार-जैसा खतरनाक शत्रु पैदा हो जाता है, जो मानवका

सर्वनाश कर देता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है— मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजिह बहु सूला॥ (७।१२१।२९) इसका अर्थ है—सब रोगों (व्याधियों)-की जड

मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से शूल उत्पन्न होते हैं। विस्मृति—मोहमें आबद्ध मानव तीनों बातोंको

भूल जाता है—अपना कर्तव्य, अपना स्वरूप, भगवान्। कर्तव्यकी विस्मृतिसे परिवार एवं समाजमें अशान्ति हो

संख्या ५ ] मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे वि	-
<u>*************************************</u>	
जाती है। स्वरूपकी विस्मृतिसे वह अपने शरीरमें फँस जाता है। भगवान्की विस्मृतिसे वह नाशवान् जगत्में	मोह है—जिनको आप मेरा मानते हैं, वे बने ही रहें, उनका वियोग न हो—इस इच्छाका नाम है—मोह।
भटक एवं अटक जाता है, जन्म-मरणके कुचक्रमें फँस	शरीर सदैव स्वस्थ ही रहे, बना ही रहे; परिवारजन बने
जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आया है—अर्जुनको मोह	ही रहें, सामान-सम्पत्ति बनी ही रहे—इस 'इच्छा' को
जाता है। त्रामद्भगपद्गाताम आया ह—अंजुनका माह हो गया, वह दु:ख एवं सन्देहके दलदलमें फँस गया।	'मोह' कहते हैं। आप सोचते हैं—भूतकालमें इनसे मुझे
भगवान्ने गीताका उपदेश दिया, उसका मोह मिट गया,	बहुत सुख मिला था, ये मेरे काम आये थे, वर्तमानमें
उसको सब कुछ याद आ गया। उसने भगवान्से कहा—	भी मुझे इनसे सुख मिल रहा है, ये मेरे काम आ रहे
`	हैं; भविष्यमें भी इनसे मुझे सुख मिलेगा, ये मेरे काम
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।	अायेंगे—इसलिये ये सब बने रहें—इस इच्छाका नाम
(१८।७३)	जायग—इसालय य सब बन रह—इस इच्छाका नाम है—मोह। सोचिये, क्या इनको बनाये रखना आपके
इसका अर्थ है—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।	वशकी बात है। नहीं, कदापि नहीं। यदि ये नहीं बने
दुर्गति—मोहके कारण ही आप पूरे जीवनभर इन	रहें, इनका वियोग हो गया तो, आपको भीषण दु:ख
तीन चीजोंकी चिन्तामें आबद्ध रहते हैं और इनकी	होगा। वियोग अवश्य होगा, या तो आप इनको पहले
चिन्तामें ही शरीरका परित्याग करते हैं। संत एवं ग्रन्थ-	छोड़ेंगे या आपको ये पहले छोड़ेंगे।
वाणीके अनुसार अन्तिम समयमें पुत्र, पत्नी, लक्ष्मी	भेरा नहीं है, प्रभुका है—मेरा नहीं है—इसका
पाणाक अनुसार जानाम समयम पुत्र, परना, लक्ष्मा (रुपये), भवनकी याद आनेसे मरनेके बाद बार-बार	अर्थ है—में मालिक नहीं हूँ। प्रभुका है—इसका अर्थ
क्रमश: सूकर, वेश्या, साँप और प्रेतकी योनि मिलती है।	है—प्रभु मालिक हैं। शरीर, परिवारजन, सामान-सम्पत्तिके
<i>'अन्त मति सो गति।'</i> अन्तिम समयमें भगवान्की	मालिक प्रभु हैं, मैं नहीं। उन्होंने अपनी चीजें विशेष
स्मृतिसे कल्याण हो जाता है।	उद्देश्यसे कुछ समयके लिये मुझे सौंपी हैं।
<b>मोह नहीं है</b> —किसी भी व्यक्ति एवं वस्तुको	कारण—प्रभु मालिक क्यों हैं, मैं मालिक क्यों
'मेरा मानना' मोह नहीं है। परिवारजनोंके साथ रहना,	नहीं हूँ—इसके निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कारण हैं—
वस्तुओंका सदुपयोग करना भी मोह नहीं है। आप	(१) <b>बनाना</b> —इन तीनों चीजोंको प्रभुने बनाया
सोचते हैं—यह मेरी माँ है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी	है, मैंने नहीं। मैंने तो अपने शरीरको भी नहीं बनाया है।
पत्नी है, ये मेरे पति हैं; यह मेरा मकान है, दुकान है,	(२) <b>नियन्त्रण</b> —रखनेकी दृष्टिसे इनपर पूर्णतया
कारखाना है—ऐसा सोचना या मानना मोह नहीं है।	प्रभुका नियन्त्रण चलता है, मेरा लेशमात्र भी नियन्त्रण
यदि आप इनको मेरा नहीं मानेंगे तो आप इनके प्रति	नहीं चलता है। मैं अपने शरीरको भी जबतक चाहूँ
अपने कर्तव्यका पालन ही नहीं कर पायेंगे। मेरा मानकर	तबतक, जैसा चाहूँ वैसा, जहाँ चाहूँ वहाँ नहीं रख
ही बहनें अपने-अपने जन्मते बच्चोंको सँभालती हैं; मेरा	सकता।
मानकर ही माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियोंका लालन-	(३) व्यवस्था—शरीरको जीवित रखनेके लिये
पालन करते हैं, पढ़ाते हैं, योग्य बनाते हैं, विवाह करते	तीन अत्यावश्यक वस्तुओंकी जरूरत होती है—श्वास,
हैं, मेरा मानकर ही परिवारजन अपने बीमार, वृद्ध एवं	्र हवा, जल। शरीरको कुशलतापूर्वक रखनेके लिये अनेक
असमर्थ परिवारजनोंकी सेवा-सँभाल करते हैं; मेरा	सामान्य वस्तुओंकी जरूरत होती है, जैसे—भोजन,
मानकर ही आप अपने व्यापार, उद्योग, सामान–	वस्त्र, आवास आदि। इन सबको बनाने एवं इनकी
सम्पत्तिको सँभालते हैं।	व्यवस्था करनेवाले प्रभु हैं, मैं नहीं। मनुष्य किसी भी

भाग ९० चीजको बना ही नहीं सकता। वह तो भगवान्की बनायी मानसिक तनाव सदैवके लिये सर्वांशमें मिट जाय; मैं हुई चीजोंका रूप, रंग, स्थान आदि ही बदलता है। जन्म-मरणके कुचक्रसे मुक्त हो जाऊँ, मुझे स्थायी (४) सँभाल—मालिक होनेके नाते इनको प्रसन्नता, परम शान्ति, परम आनन्द मिल जाय, मुझे सँभालनेकी मुख्य जिम्मेवारी, लगभग ९९ प्रतिशत प्रभुके दर्शन हो जायँ; मैं प्रभुका भक्त बन जाऊँ। अनेक प्रभुकी है, मेरी जिम्मेवारी कम, केवल एक प्रतिशत है। वर्षोंसे ये चीजें मेरे पास हैं, फिर भी मेरी यह माँग कैसे ? इसके निम्न तर्क हैं—पहला, इस शरीरके भीतर पूरी नहीं हुई। स्मरण रहे—परिवारजनों और सामान-एवं बाहर अनेक प्रकारके अंग लगे हुए हैं। हृदय, सम्पत्तिके द्वारा आपके शरीरको सुखसामग्री एवं सुख-लीवर, किडनी, फेफडे, मस्तिष्क तन्त्र, आमाशय तन्त्र सुविधाएँ मिलती हैं। शरीरके द्वारा आपको इन्द्रियजन्य आदि भीतरके अंग हैं। आँखें, कान, नाक, जीभ, दाँत, क्षणिक दु:खमिश्रित सुख मिलता है, आपको शान्ति नहीं हाथ आदि बाहरके अंग हैं। तुलनात्मक दुष्टिसे बाहरके मिलती है। अंगोंकी तुलनामें भीतरके अंग ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभुके लिये है-इसका अर्थ है-प्रभुको प्रेम देनेके भीतरके महत्त्वपूर्ण अंग प्रभु सँभालते हैं। बाहरी कम लिये है। प्रभु मानव हृदयके प्रेमके भूखे हैं, प्रेमके प्यासे महत्त्वपूर्ण अंगोंको सँभालनेकी जिम्मेवारी मेरी है। हैं। श्रीरामचरितमानसमें आया है-दूसरा, जो कार्य हैं-भोजन करना और भोजनके बादका रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥ कार्य। बादका कार्य है-भोजन पचाना, रक्त बनाना, उस (२।१३७।१) रक्तको नसोंमें भेजना, भोजनकी शक्तिको शरीरके रोम-इसका अर्थ है-श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम रोमतक पहुँचाकर शरीरका सन्तुलित विकास करना प्यारा है। जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो) वह आदि। भोजन करनेका कम महत्त्वपूर्ण कार्य प्रभुने मुझे जान ले। प्रेम—प्रेमका अर्थ है—प्रसन्नता। प्रभुको प्रेम सौंपा है। भोजनके बादका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जटिल एवं कठिन कार्य प्रभु करते हैं। तीसरा, गहरी नींदमें इस देनेका अर्थ है-प्रभुको प्रसन्नता देनेकी भावना रखना शरीरको पूर्णतया प्रभु सँभालते हैं, उस समय मुझे तो यह और इन तीनोंके द्वारा प्रभुको अपार, असीम, अनन्त प्रेम भी पता नहीं रहता कि मेरा शरीर कहाँ है, किस देना। कैसे दें प्रेम-प्रभुको प्रेम देनेकी विधि इस प्रकार अवस्थामें है। प्रभाव—तीनों चीजें मेरी नहीं हैं, मैं इनका मालिक नहीं हूँ – इस मान्यताका प्रभाव यह होगा कि (१) स्मृति—हर समय, हर परिस्थिति, हर आप इनकी चिन्ता एवं इनके न रहनेके भयसे मुक्त हो अवस्थामें, हर स्थानपर आपको यह बात भलीभाँति याद जायँगे। प्रभु मालिक हैं-इस मान्यताका प्रभाव यह रहनी चाहिये कि ये तीनों चीजें प्रभुकी हैं, इनके मालिक होगा कि आपके जीवनमें प्रभुकी अखण्ड स्मृति जाग्रत् प्रभु हैं और इस यादका आपके जीवनमें यह प्रभाव होना चाहिये कि इनमेंसे कोई भी चीज प्रभु वापस लें तो हो जायगी, भगवान्के नाते ये चीजें आपको प्रिय लगेंगी, आपको दु:ख, चिन्ता, अशान्ति न हो। आप प्रसन्नतापूर्वक इनकी सँभाल एवं सेवा होगी। मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है—ये तीनों प्रभुकी चीज प्रभुको लौटा दें। चीजें मेरे लिये नहीं हैं-इसका अर्थ है-ये तीनों चीजें (२) प्रभुकी प्रसन्तता—जबतक प्रभुकी ये तीन चीजें आपके पास हैं, तबतक इन तीनोंके साथ आप जो मुझे वह नहीं दे सकतीं जो मैं चाहता हूँ, जो मेरी माँग हैं Hinduism Discord Server httpई://dsc.gg/dharma\_k; MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha है। मैं चीहता कि मेरा दु:ख, चिन्ता, भय, अशान्ति, कुछ करं, उसका एकमात्र उद्देश्य रहे—प्रभुकी प्रसन्नता,

मेरा नहीं है, प्रभुका है, मेरे लिये नहीं है, प्रभुके लिये है संख्या ५ ] न कि अपना सुख। प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सब कुछ कहते हैं-करना है, अपने सुखके लिये कुछ भी नहीं करना है। सो अनन्य जाकें असि मित न टरइ हनुमंत। (३) सामान-सम्पत्ति—सुईसे लेकर हीरे-मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ मोतीतक आपके पास जो भी सामान है; खेत, मकान, (818) जमीन, जायदादके रूपमें जो भी सम्पत्ति है, उसको इसका अर्थ है-हे हनुमान्! अनन्य (भक्त) वही प्रभुकी धरोहर मानकर सावधानीसे सँभालकर रखें, है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक सुरक्षित रखें, उसका सदुपयोग करें और मनमें यह हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भावना रखें कि इससे मेरे प्रभुको बहुत प्रसन्नता होगी। भगवान्का रूप है। श्रीभरतलालजीने इसी भावनासे प्रभुकी सम्पत्तिको सँभाला। (६) कार्य—प्रात:काल उठनेसे लेकर रात्रिमें श्रीरामचरितमानसमें आया है-सोनेतक आप अपने शरीर, घर, परिवार, नौकरी, व्यापार, संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥ समाज आदिके विभिन्न कार्य करते हैं। इन कार्योंको प्रभुके कार्य मानकर, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये पूरी तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥ सावधानीसे करें। यही प्रभुकी पूजा है। (२।१८६।३-४) (७) साधना—पूजाके कमरेमें बैठकर अथवा इसका अर्थ है—सारी सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीकी है। यदि उसकी (रक्षाकी) व्यवस्था किये बिना उसे ऐसे ही पूजाघरके बाहर आप पूजा-पाठ, जप-तप, भजन-छोड़कर चल दूँ तो परिणाममें मेरी भलाई नहीं है; कीर्तन, व्रत, उपवास, तीर्थ, दान आदिके रूपमें जो भी क्योंकि स्वामीका द्रोह सब पापोंमें शिरोमणि है। साधना करते हैं, वह प्रभुकी प्रसन्नताके लिये करें। (श्रीभरतजीने सब प्रकारसे प्रभुकी सम्पत्तिकी व्यवस्था प्रेमी-भक्त—जो भगवान्को प्रेम देता है, वह है की)। भगवान्का प्रेमी भक्त। शरीर, परिवारजन, सामान-(४) शरीर—प्रभुने आपको तीन शरीर दिये हैं— सम्पत्तिके द्वारा उपर्युक्त तरीकेसे प्रभुको प्रेम देकर आप स्थूल, सूक्ष्म, कारण। तीनों शरीरोंको प्रभुके मेहमान प्रभुके प्रेमी-भक्त बन जायँ। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने यही बात मानकर, प्रभुकी प्रसन्तताके लिये इनकी इस प्रकार सेवा करें—स्थूल शरीरको श्रमी, संयमी, सदाचारी और बतायी है— स्वावलम्बी रखें। सुक्ष्म शरीरको ममता, कामना, राग, द्वेष, सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥ दीनता एवं अभिमानसे मुक्त करके निर्मल और पवित्र बना जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तिक मोही॥ लें। कारण शरीरको कर्तापनके अभिमानसे मुक्त करके तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥ सर्वथा अहंकारशुन्य बनाकर इसके अस्तित्वको मिटा दें। जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥ (५) परिवारजन—इस सत्यको सदैव याद रखें— सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।। परिवारजन साक्षात् प्रभु हैं, मैं उनका सेवक हूँ। इस समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।। भावसे परिवारजनोंकी भरपूर सेवा करें। उनको सुख, अस सञ्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥ सुविधा, सम्मान, प्रेम, प्रसन्नता दें, उनके प्रति हितभाव सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। रखें, उनका हित करें। उनकी सेवासे आप प्रभुके महान् ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ भक्त बन जायँगे। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीराम (५।४८।१-७,५।४८)

[भाग ९० कहानी— द्वार खोलो! (श्री 'चक्र') 'अरे सतीश, बोल तो भाई!' अनेक बार पुकारने, 'उमा एक ऐसा ही पिल्ला ले आया है।' किवाड़ोंको हिलाने और कुण्डी खटखटानेपर भी कोई रमाकान्तने द्वार खोल लिया तारसे। 'इससे कुछ अधिक शब्द भीतर सुनायी नहीं पड रहा था। झबरा। अब तुम दो कुत्तोंको सोते-सोते पकड़े नहीं रख 'बाबू!' धर्मशालाके चौकीदारने घबराहटसे सकोगे।' रमाकान्तकी ओर देखा। यदि कोई दुर्घटना हुई तो पुलिस 'मेरे लिये एक ही बहुत है।' कुछ अप्रसन्नताके उसे तंग करेगी। 'अभी सबेरे तो नलपर देखा था इन स्वरमें सतीश बोल रहा था। उसे इस प्रकार किसीका बाबूको। बढ़ई सामने रहता है, बुला लाता हूँ!' यदि आना बहुत अरुचिकर हुआ था-अपने मित्रका आना यात्री इस प्रकार चिल्लाने और द्वार पीटनेपर भी न बोले भी। 'मैंने नियम पढ़ लिये हैं। आज धर्मशाला खाली तो बढ़ईसे किवाड़ ख़ुलवानेके अतिरिक्त उपाय क्या कर दूँगा। तुम्हें कहना नहीं पड़ेगा।' चौकीदारकी ओर देखा उसने। रहता है? 'और कोई उसके पास आया था क्या?' आशंका 'उसमें सात दिनकी बात लिखी तो है।' चौकीदार संकृचित हुआ। उसके मनमें भी यह बात नहीं आयी सहज थी। 'एक छोटा-सा कुत्ता है-बस!' चौकीदारने बताया। थी। 'लेकिन खाली ही पड़ी है न सब धर्मशाला। कौन 'वह इनके साथ ही रहता है। दूसरा कोई इन सात दिनोंमें आता है यहाँ। आप कमरा छोड़ें, इसकी क्या जल्दी यहाँ इनके पास आया हो, ऐसा मुझे नहीं लगा। कहीं है।' यहाँ इतनी दुर कोनेकी धर्मशालामें कदाचित् ही बाहर भी जाते मैंने नहीं देखा। केवल सामनेकी दुकानसे कोई यात्री आता है। चौकीदारके लिये तो सूनी धर्मशाला कुछ पृडियाँ ले आते हैं और बन्द हो जाते हैं इसी सायँ-सायँ करती है। कोई रहे तो कुछ तो जनशून्यता कमरेमें। बड़े दुखी जान पड़ते हैं।' बिखरे बाल, अस्त-कम रहेगी। व्यस्त वस्त्र, सूखा-सा मुख, चौकीदार जब इस स्वस्थ 'जल्दी तो मुझे है!' सतीशने कहा और मुख फेर सुन्दर युवकको देखता, उसके मनमें सहानुभूति जाग्रत् लिया। चौकीदार धीरेसे कमरेसे निकल गया। 'तुमने द्वार हो जाती। किसी बड़े घरका लड़का है, वह कुछ पूछता खोल दिया, यह हीरा भी मेरे पाससे भाग जाना चाहता यदि उसे तिनक भी आशा होती कि युवक उत्तर देगा, है।' कृत्तेको उसने एक प्रकारसे दबा रखा था। बेचारा पर वह तो कमरेसे निकलता ही कम है। निकलता है पिल्ला—वह कूँ-कूँ करता और अपनेको छुड़ा लेनेके तो जैसे किसीकी ओर न देखनेका नियम कर लिया हो। प्रयत्नमें था। 'उसे छोड दो, सम्भव है उसे शौचकी आवश्यकता 'हीरा!' रमाकान्त द्वारकी पतली सन्धिपर नेत्र लगाकर भीतर देखनेका प्रयत्न कर रहा था। उसका हो या वह केवल मेरे पास आना चाहता हो। वह शीघ्र ध्यान चौकीदारकी ओर नहीं था। तुम्हारे पास लौट आयेगा।' रमाकान्तने पासके आलेपर 'वह जाग रहा है! कुत्तेको उसने पकड़ रखा है।' कुछ देखा। वह उधर ही बढ़ा। 'मुझे कई दिनोंसे तुम्हारी भीतर अपना नाम सुनकर कुत्ता कूँ-कूँ करने लगा था। आवश्यकता है। बड़ी कठिनतासे तुम्हें पा सका हूँ। वह द्वारके पास नहीं आ सका, इसका कारण समझना केवल कुछ समयके लिये मेरे साथ चलो!' कठिन नहीं था। 'तुम एक पतला तार ले आओ!' धीरेसे 'तुम इसे ले जा सकते हो। या फिर यह जहन्तुम चौकीदारको उसने समझाया। जाय।' कुत्तेको उसने फेंक दिया और झपटकर आलेसे

संख्या ५] द्वार खे	ालो! ३३
छोटी नारंगी रंगकी शीशी उठा ली। 'मुझे क्षमा करो!	रिक्शेपर बैठ गये।
मैं कहीं नहीं जाऊँगा।'	धर्मशालाका चौकीदार एक बार ध्यानसे उनकी
'मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं। अपनी शीशीका उपयोग	ओर देखता रहा। उसे नवीन आगन्तुककी सफलतापर
तुम जैसे अभी कर सकते हो, वैसे ही सायंकाल भी।'	प्रसन्तता हुई। 'अवश्य जब दोनों लौटेंगे, वे प्रसन्त
जिस शीशीको सतीशने उठाया था, उसपर लगे लेविलपर	होंगे।' मन-ही-मन उसने कहा—'मैं उनके लिये एक
लाल स्याहीसे कुछ छपा है। 'विष' होना चाहिये उसे।	कमरा और स्वच्छ कर लूँगा तबतक और वे यहाँ एक
परीक्षामें अनुत्तीर्ण, माता-पितासे तिरस्कृत छात्र और क्या	महीने आनन्दसे रहें तो अच्छा ही है।' गर्मियोंमें
करेगा। 'तुम जानते हो कि मेरा छोटा भाई केवल तुम्हें	पढ़नेवाले सम्पन्न घरोंके लड़के घूमनेकी छुट्टी पाते हैं,
मानता है। उसकी आँखें दु:खनेको आयी हैं और वह	इतना इसे पता है।
किसीको कोई ओषधि लगाने नहीं देता।' रमाकान्तने	× × ×
एक बात निकाल ली।	[२]
'मैं डॉक्टर नहीं हूँ, वह चाहे जो करे' पर उसे	'हम जानते ही थे कि तू कुछ पढ़ता–लिखता नहीं
वह छोटा बच्चा स्मरण आया। हँसता, खेलता सुन्दर-	है।' पिताने समाचारपत्र उसके सम्मुख फेंक दिया।
सा लड़का। उसकी आँखें दु:खनेको आयी हैं। दोनों	उसमें परीक्षाके उत्तीर्ण छात्रोंके नम्बर निकले हैं। वह
हाथोंसे नेत्रोंको मलकर और भी पीड़ा बढ़ा लेता होगा।	स्वयं देख चुका है कि उसका नम्बर नहीं है। 'इधर-
रोता होगा। हुआ करे—उसे क्या। वह तो मरनेवाला है।	उधर मटरगश्तीसे तो पास हुआ नहीं जा सकता।'
संसारमें उसका कोई नहीं। 'मैं कुछ कर नहीं सकता।'	'मैं पहले कहती थी न कि इसके लिये रुपये नष्ट
उसने कठोरतासे ओष्ठ दबा लिये।	न करो।' विमाता पता नहीं क्यों उससे सदा रुष्ट रहती
'तुम ऐसा कैसे कर सकते हो। विद्यालयमें	हैं। छोटा था तभी जननी परलोक चली गयीं। एक बार
किसीकी तनिक-सी चोट, जरा-सा सिर-दर्द तुम सह	पिताका स्नेह मिला, पर जैसे ही विमाता आयीं, वे भी
नहीं सकते थे। तुम्हारा अधिकांश व्यय ओषधियोंपर	खिंचे-से रहने लगे। आज सबको उसपर झल्लाहट है।
होता है। वह बच्चा तुम्हें प्रिय है।' रमाकान्तने तनिक	वह कभी घरमें किसीसे खुलकर नहीं बोलता। अवकाशमें
भी ध्यान उपेक्षापर नहीं दिया। 'चलो उठो! एक बार	भी किसी मित्रके यहाँ ही समय काट लिया करता है।
उसे देख लो। यदि कुछ न करनेकी इच्छा तुम्हारी होगी	आज तो बोलेगा ही क्या। 'यह आवारा और मूर्ख है,
तो मैं स्वयं यहाँ या जहाँ कहोगे तुमको पहुँचा दूँगा।'	यह बात मैंने तुमसे कितनी बार कही।' विमाताकी बात
उसने हाथ पकड़ा और मस्तकको सहारा दिया।	ठीक ही होगी। मूर्ख न होता तो श्रम करके भी अनुत्तीर्ण
'महा असभ्य और उजड्ड है यह।' मन-ही-मन	क्यों होता। वह अपनी चिन्तामें डूबता ही गया।
झल्लाया वह। उठकर बैठ गया और घूरने लगा। ऐसे	'तुम्हें श्रम करना चाहिये था' किसी प्रकार घरसे
व्यक्तिसे झगड़ना भी आज उसके मनके विपरीत था।	दृष्टि बचाकर निकल सका तो मार्गमें पण्डितजी मिल
'तुम्हारी चप्पलें सुन्दर हैं। जूता आवश्यक नहीं।	गये। सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने कहा 'स्थूल-
मैं नीचे रिक्शा छोड़ आया हूँ।' रमाकान्तने चप्पलें	बुद्धि लड़के भी पर्याप्त श्रमसे सफल होते हैं। पिताका
सम्मुख खिसका दीं और हाथ पकड़कर उठा दिया उसे।	ध्यान तो करना ही चाहिये तुमको।'
'बालोंमें आज बिना कंघी किये भी चलेगा।' दोनों	'वह स्थूलबुद्धि है, श्रम नहीं करता' सब यही तो
कमरेसे बाहर हुए। द्वार बन्द कर दिया गया और फिर	कहते हैं। तब यही बात ठीक होगी। विमाता बराबर
जैसे उनका परस्पर कोई परिचय न हो। चुपचाप दोनों	कहती हैं—'वह मूर्ख है, आवारा है, घमण्डी है।'

भाग ९० कॉलेजके अध्यापक और सहपाठी भी उसे चिढाते ही स्नेह करे, आज उसे यह सह्य नहीं। हैं। 'वह अब पढ़े भी तो सफल नहीं होगा। उसकी किसीको क्या आवश्यकता है। कोई उसे नहीं चाहता। [3] 'मैं दवा नहीं डालूँगा। मेरी आँख ठीक नहीं व्यर्थ है उसका जीवन।' मनुष्योंसे दूर हो जाना चाहता था वह। कोई ऐसा स्थान, जहाँ वह चुपचाप रो सके। होगी।' वह पाँच वर्षका बालक गोदमें छटपटा रहा था। नगरके एक कोनेमें वह धर्मशाला आज उसे अपना सिर और हाथ हिलाता तथा रोता जाता था। स्मरण हुई। किसी दिन वह हँसा था उसके निर्मातापर। 'तुम अच्छे लड़के हो! तुम्हारी आँखें अच्छी हो जायँगी!' सतीशने बच्चेको गोदमें ले लिया था। 'कितना भोंदु होगा यहाँ इसे बनवानेवाला। भला यहाँ कौन आयेगा।' उसने अपने एक साथी मित्रसे कहा था। बच्चेको देखते ही उसकी उदासीनता कम हो गयी थी। प्रत्येक तीन वर्षोंपर जब पुरुषोत्तम मासमें यात्री पंचक्रोशीके 'इतनी बार तो दवा लगायी!' बालकके स्वरमें लिये निकलते हैं, धर्मशाला उनके लिये कितनी उपयोगी झल्लाहट घट रही थी। है, यह उसे कौन बताये; किंतु आज वही धर्मशाला उसे 'मैं अच्छी दवा डालूँगा!' उसने पुचकारा। किसी आश्रय प्रतीत हुई। प्रकार दवा डाली जा सकी। हीरा-उसका छोटा कुत्ता, पता नहीं कैसे घरसे 'तुम जाओ मत! मैं तुम्हारे साथ चलूँगा!' लड़का उसके साथ हो गया। एक दरी उसे खरीदनी पडी थी दोनों हाथ उसके गलेमें लपेटकर चिपक गया था। वह और एक लोटा। जब मरना ही है तो सुविधासे, एकान्त नेत्र खोल नहीं पाता था। देखकर व्यवस्था करनी चाहिये। अनेक योजनाएँ आयीं 'मैं कहीं नहीं जाता हूँ!' आश्वासन देना आवश्यक मनमें; सबमें कुछ-न-कुछ आशंका थी। धर्मशालामें था। कमरा बन्द रहेगा। विषको गलेसे नीचे उतारकर सो 'तुम स्नान करो! भोजनका समय हो चुका है!' रहेगा वह। कुत्ता-पहले उसने उसे भगा देना चाहा। रमाकान्तने धोती और तौलिया स्नानघरमें रखनेके पश्चात् 'यह रहेगा तो पिताजीको सूचना मिल जायगी। कहा। 'अब आज तो दूसरी बार दवा तुम्हें ही लगानी विमाताको सन्तोष हो जायगा।' कृत्तेके गलेके पट्टेपर है !' उसने चाकूकी नोकसे घरका नाम-पता कुरेद लिया। 'गलेसे लिपटा यह बालक, उसका यह मित्र और 'कोई मुझे ढूँढ़ने न निकला होगा।' धर्मशालाके बालकके माता-पिता, सभी उससे स्नेह करते हैं। सभी कमरेमें उसे पता नहीं क्या-क्या सूझता है। 'किसीको उसका सत्कार करना चाहते हैं। क्या यह सत्कार सच्चा मेरे लिये क्यों चिन्ता होगी?' उसने शीशीकी ओर नहीं है ?' वह चुपचाप मित्रके मुखकी ओर देखता रहा। देखा—'एक नींद ले लूँ और फिरः……।' आज जेब बच्चेको पृथक् करना सरल नहीं था; परंतु समझा-खाली हो गयी थी। अब भूख लगे, ऐसी स्थिति ही क्यों बुझाकर स्नान भी करना ही था। आयेगी। 'तुम कितने निपुण हो!' मित्रने भोजन करते समय 'आज सात दिन हो गये। चौकीदार कमरा खाली उससे कहा, 'कितने पीडितोंका परित्राण करनेमें तुम करनेको कहने आया है।' कोई द्वार खटखटा रहा था। समर्थ हो सकते हो यदि साहस करो! आज ऐसे ही 'यह तो रमाकान्त है। होने दो, मैं अब नहीं उठूँगा। युवकोंकी जनसेवक-संस्थाको आवश्यकता है!' यह किसीसे अब नहीं मिलना है। दृष्ट कहींका, आज सात निश्चितप्राय था कि सतीश अब आगे पढ नहीं सकेगा। दिनपर आया है। पीटने दो द्वार!' कृता भी बोलने लगा उसके पिता आर्थिक सहायता देनेको तत्पर न होंगे। ध्याना अपनि प्रमान निक्र कार्य के प्रमान के अपनि के स्वापन के स्वापन के सम्बद्धित के स्वापन के स्वपन के स्वापन के स्वापन के स्वपन के स्वप

संख्या ५ ]	ोलो! ३५
\$	************************
इसका भार वहन कर सके।	चिढ़ हो गयी थी। धीरे-धीरे वह उनकी अवज्ञा करने
'महीनोंके पश्चात् आज मैं प्रसन्न हूँ!' सतीशने	लगा था।
मित्रकी ओर देखा। 'तुम्हारी योजनापर विचार करनेको	'लेकिन मैं घरसे चला गया और किसीने मेरी कोई
जी चाहता है!'	खोज-खबर नहीं ली!' सतीशको यही बात सबसे
'माधवके नेत्र अच्छे होनेतक विचार करनेका पूरा	अधिक खटकती है। जितना शारीरिक कष्ट उसे उन
समय है तुम्हारे पास।' रमाकान्त हँसते हुए बोले—	सात दिनोंमें मिला है, उससे कहीं अधिक मानसिक कष्ट
'अपने कमरेकी चाभी मुझे दे दो! मैं उसे खोल	भोगता रहा वह।
आऊँगा! तुम्हारी नयी दरी मुझे पसन्द है। उस मनहूस	'तुमने स्वयं द्वार बन्द कर लिये और चाहते हो कि
शीशीको जिसे तुम दरीके नीचे छिपा आये हो, अब तुम	लोग तुम्हारे पास आयें!' रमाकान्तने संकेतसे समझाया।
पा नहीं सकते!'	पता लगानेका कोई सूत्र सतीशने छोड़ा ही कहाँ था।
'आवश्यकता हुई तो दूकानोंमें वह फिर मिल	यदि अचानक उनके नौकरने घरसे कामपर आते समय
जायगी!' सतीश हँस पड़ा। 'मैं सायंकाल फिर आ	उसे धर्मशालामें जाते न देख लिया होता!
जाऊँगा और शीशी तुम्हें दे दूँगा।' वह कैसे बराबर कई	'रमा बेटा! तू अब इसे छुट्टी दे दे!' सतीशकी
दिनों यहीं टिके रहनेका निमन्त्रण स्वीकार कर ले!	विमाता ऊपर आ गयी थीं। 'सतीश, चल भैया! अब
'तुम माधवको अधिक रुलाना पसन्द नहीं कर	हम कुछ न कहेंगे! तू माता-पितासे इतना अप्रसन्न हो
सकते! रमाकान्तका आग्रह सकारण था। चाभी मुझे	जायगा, यह तो हमने कभी सोचा ही नहीं था। तेरी
दो! मैं तुम्हारी दरीके लिये झगड्ँगा नहीं!' सतीश भी	इच्छा हो तो फिर परीक्षा देना, न हो तो कोई बात नहीं!'
समझता है कि अब उसके लिये धर्मशाला जाना	जैसे सतीश छोटा बच्चा ही हो अभी। वे उसके सिरपर
आवश्यक नहीं।	पीछे खड़ी होकर हाथ फेर रही थीं।
× × ×	'यह पिताको प्रसन्न नहीं करेगा तो जगत्पिता
[४]	इसपर प्रसन्न रहें, ऐसी आशा ही कैसे कर सकता है।'
'पिताजीने मुझे बुलाया है!' सतीशको आश्चर्य था	सतीश इधर धर्मके प्रति आस्था खो बैठा है। रमाकान्तको
कि स्वयं विमाता उसे लेने आयी थीं। वह अपने मित्रसे	यह बात बहुत खटकती है।
विदा हो रहा था। 'उनका आग्रह है कि मैं पुन: परीक्षामें	'तू अपनी तोतारटन्त रहने दे!' सतीशने कृत्रिम
बैठूँ।'	रोष दिखाया।
'तुम घर जाओ!' रमाकान्तने उसे समझाया।	'तुम दोनों लड़ो मत!' माता तो माता ही है 'अभी
'पिताजीको तुम्हें सन्तुष्ट करना ही चाहिये!'	ें तो घर चलो!' उन्होंने दोनों मित्रोंको आमन्त्रित किया!
'वे इस प्रकार कभी मुझे पत्र न लिखते!' स्वयं	'चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ!' रमाकान्त उठे।
सतीशको बार-बार इधर घरका स्मरण हुआ है।	'तुमने पिताके लिये धर्मशाला पहुँचनेका मार्ग बन्द कर
'तुमने कभी उनको या माताजीको प्रसन्न करनेका	दिया था और परम पिताके लिये हृदयका द्वार अबतक
प्रयत्न भी किया?'	बन्द कर रखा है!' जैसे कोई चेतावनी दी जा रही हो।
'कदाचित् कभी नहीं!' अब उसे स्मरण आ रहा	'पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!'
है, जब यह नवीन माताजी आयी थीं। उन्होंने उसे गोदमें	रमाकान्तकी माता आ रही थीं! उन्होंने ही कहा था।
लेकर पुचकारा था। भाग गया था वह। बराबर वह	'बहन, मैं रमाको लिये जा रही हूँ!' सतीशकी
मातासे पृथक् रहता था। पितासे भी पता नहीं क्यों उसे	माताने अनुमति ली।

भाग ९० 'मैं धर्मशालाके कमरेका द्वार बन्द करके बैठने तो शंकरजीको दुध चढाया, पाठ किये और जप किया। सब जा नहीं रहा हूँ।' हँसकर रमाकान्तने सबको हँसा दिया। व्यर्थ-वह उत्तीर्ण नहीं हुआ। 'यह पूजा-पाठ कुछ नहीं। कोई ईश्वर नहीं!' एक प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई [4] उसी दिन उसके मनमें। 'यह सब कबतक समाप्त होगा!' अखण्ड कीर्तन-'यदि उस समय उत्तीर्ण हो गया होता? आज भवनको देखकर सतीशचन्द्रजीने एक ही प्रश्न पृछा था। किसीके यहाँ नौकरी करता!' आज उसे अपनी स्थितिपर कहीं कथा, कहीं कीर्तन, कहीं पाठ। एकान्त शान्त सहसा आश्चर्य हुआ। इस उच्चपदको पानेमें उसका झोपडियोंमें सीधे सरल साधक मौन रहते हैं, साधारण अनुत्तीर्ण होना और पिताके आग्रहपर भी फिर परीक्षा न भोजन करते हैं, जप, पाठ, पूजामें ही उनका समय देना कारण हुआ। उसी असफलताने तो सेवा-मार्गमें व्यतीत होता है। भवनके व्यवस्थापकने इतने प्रसिद्ध प्रवृत्त किया। 'क्या भगवान् हैं?' आज फिर उसका हृदय पूछ रहा है। 'मेरी वह प्रार्थना सुनी गयी थी? मेरी नेताके आगमनपर हर्ष प्रकट किया। उनका स्वागत पूजा स्वीकृत हुई थी?' उसे लगता है, उस अज्ञात हुआ। सब स्थान उन्हें दिखाये गये। पूरी व्यवस्था समझायी गयी। 'यहाँके लोग हैं तो अच्छे, पर व्यर्थ शक्तिने उसे कितना बड़ा वरदान दिया। 'मैं मूर्ख हूँ! मैं समय नष्ट करते हैं। समाजकी सेवामें लगें तो देशका कृतघ्न हुँ!' कुछ लाभ भी हो।' 'कहाँ हैं भगवान्?' पर उसका हृदय आज बदल 'जीवनमें शान्ति न हो तो समाजको शान्ति दी नहीं गया है। 'भगवान् कहाँ नहीं हैं?' स्वयं अपने व्याख्यानोंमें जा सकती!' व्यवस्थापक अपने अतिथिसे विवाद नहीं वह यही तो बार-बार कहता है। 'किनपर शासन करता है वह? किनपर अधिकार प्रकट करता है?' करना चाहते थे। सतीशने उनके प्रतिवादपर ध्यान नहीं 'पिताका द्वार पुत्रके लिये सदा खुला रहता है!' दिया। 'जीवनमें शान्ति?' वहाँसे आनेपर भी उसके मनमें रमाकान्तकी माताके शब्द उसे स्मरण आते हैं और यह वाक्य बराबर खटकता है। उसने लोगोंके लिये कष्ट स्मरण आते हैं रमाकान्तके शब्द—परमपिताके लिये द्वार उठाया, जेल गया, पीटा गया और अनेक यातनाओंके खोलो! तुम अपने कृत्तेके भागनेके डरसे द्वार बन्द करोगे तो मित्र आयेंगे कैसे ? हृदयके द्वार खोलो! सेवा, स्नेह पश्चात् अब उसे नेतृत्व प्राप्त हुआ। अधिकार मिला उसे। अब लोग उसकी समालोचना करते हैं। उसे दो दूसरोंको! प्रभुके लिये उन्मुक्त करो उसे! आनन्द और शान्ति उसमें तभी आयेंगे!' स्वेच्छाचारी बताया जाता है। उसके पक्षमें बहुमतको अल्पमतमें बदलनेका प्रयत्न करते हैं लोग। कहाँतक वह 'मैंने द्वार बन्द कर दिया अधिकार लेकर!' वह लोगोंके लिये ही कष्ट सहे। वह भी मनुष्य है, उसकी सोचता है 'दु:ख, अशान्ति धर्मशालाके बन्द कमरेमें भी भी सुविधा है, उसे भी सुख चाहिये। तो मुझे मिले थे! द्वार खोलना है। जगत्पिता! तू मेरे 'सुख—सुख कहाँ है?' कितना अशान्त, कितना हृदयमें आ और मुझे अपनी मंगल शान्तिमें आने दे!' चिन्तित रहना पडता है उसे। पहले लोग उसे चाहते थे, देशका एक उच्च नेता इस प्रकार रो सकता है, यह उसका निजी मन्त्री आश्चर्यसे देखता रहा; किंतु आज उससे प्रेम करते थे। अब लोग उसके विरोधी होने लगे हैं। 'शान्ति—ईश्वर?' पर ईश्वर होता तो क्या वह उस उसे किसीकी चिन्ता नहीं थी। द्वार उन्मुक्त हो गया था परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया होता! कितनी प्रार्थना की थी और शीतल वायुकी भाँति सुखद अनुभूति वहाँ व्याप्त उसने। कितना रोया था। हनुमान्जीको लड्डू चढाये, हो रही थी।

संख्या ५ ] धर्मका स्वरूप धर्मका स्वरूप [ महाभारत-प्रसंग ] ( श्रीअमृतलालजी गुप्ता ) 'महाभारत' में थोड़ा दुर्योधनके सेनापतियोंके नामपर शल्यको श्रीकृष्णकी बराबरीका ही सारिथ माना गया तो ध्यान दीजिये, उसके प्रथम सेनापति थे भीष्म। जब जैसे श्रीकृष्ण अमर हैं, उसी प्रकार उन्हींके समान कुशल उन्होंने शरशय्या ले ली, तो द्रोणाचार्य सेनापित बने। सारिथ होनेके कारण शल्यको भी दुर्योधनने अमर मान द्रोणाचार्यके बाद कर्ण और कर्णके पश्चात् शल्य। ये लिया। पर अन्ततोगत्वा दुर्योधनका सारा गणित धरा-चारों जो एक-के बाद-एक दुर्योधनके सेनापित बने, का-धरा रह गया। जिन चारों सेनापतियोंको उसने अमर कितने महान् व्यक्ति थे। बाल-ब्रह्मचारी भीष्म, महान् माना था, वे सब-के-सब मारे गये। इसपर प्रश्न उठता तपस्वी शस्त्रविद् द्रोणाचार्य, महान् दानी कर्ण और है कि धर्म अमर है या मृत्यु ? इसका उत्तर है कि धर्म महान् पुण्याभिमानी शल्य। तो ब्रह्मचर्य, तप, दान और तो अमर ही है, पर जो धर्म अधर्मको अमर बनानेके पुण्याभिमान—ये चार सेनापित हैं दुर्योधनके और वे लिये सचेष्ट हो, वह धर्म है क्या? यही प्रश्न है। चारों मारे गये! ऐसा क्यों? दुर्योधनका साथ देते वक्त कौरवपक्षके भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य सभी मारे उक्त चारों सेनापतियोंको विचार करना था कि हम जाते हैं। अन्तमें जब अकेला दुर्योधन बचा रहता है तो किसका साथ दे रहे हैं? दुर्योधन अधर्मका प्रतीक है गान्धारी उससे कहती है-पुत्र! सब तो मारे गये, पर और उसके ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमान—ये मैं तुम्हें नहीं मरने दूँगी। जब गान्धारीका धृतराष्ट्रसे चार सेनापति उस अधर्मको जितानेके लिये लडाई लड विवाह हुआ तो गान्धारीने निश्चय किया कि यदि मेरे पतिदेव अन्धे हैं तो फिर मैं भी अपनी दृष्टिका उपयोग रहे हैं! अब यह सोचनेकी बात है कि ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमानका संरक्षण प्राप्त करनेसे अधर्म नहीं करूँगी। इसलिये उसने अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध अमर हो जायगा अथवा अधर्मका साथ देनेके कारण ली, लोगोंने कहा 'धन्य है गान्धारी, जिसने आँखोंके ब्रह्मचर्य, तप, दान और पुण्याभिमान मारे जायँगे। रहते हुए भी उनपर पट्टी बाँधकर पातिव्रत-धर्मका पालन दुर्योधन पहले तर्कको मानता था, वह सोचता था कि किया।' अधर्मका संरक्षण पाकर वह अमर हो जायगा। गान्धारी वास्तवमें मूर्तिमयी ममता है। केवल गान्धारी ही पट्टी नहीं बाँधती, अपितु हम जितने भी क्योंकि भीष्मको वरदान था कि वे जब चाहेंगे, तभी मरेंगे। इसलिये दुर्योधनने सोचा कि हमारा सेनापति ममतावाले हैं, सब-के-सब अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधे कैसा बढ़िया है, जो इच्छामृत्यु प्राप्त है, जो किसीके हुए हैं। वे कहते हैं कि चाहे जो कुछ भी हो, लेकिन मारनेसे नहीं मरेगा और द्रोणाचार्य कैसे हैं? वे मृत्युको हमें अपने प्रियजनोंकी विकृतियोंके बारेमें कुछ नहीं तब प्राप्त होंगे, जब शस्त्रका त्याग कर देंगे। शस्त्रका देखना है। धृतराष्ट्र और गान्धारीका पक्ष यह है कि त्याग भी तभी करेंगे, जब उनके पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्यू दुर्योधन, दु:शासन और हमारे सौ बेटे चाहे कितने भी होगी और अश्वत्थामा तो कभी मरेंगे ही नहीं; क्योंकि बुरे क्यों न हों, पर हैं तो हमारे बेटे और यह केवल वे अमर हैं, इसलिये द्रोणाचार्य भी अमर रहेंगे। कर्ण तो महाभारतका ही सत्य नहीं है, बल्कि सत्य तो हमारे और आपके जीवनका भी है। हमने निर्णय लिया है कि अमर है ही; क्योंकि कवच-कुण्डलके साथ उसका जन्म हुआ है और जबतक उसके कवच-कुण्डल हमारा बेटा बुरा भी है, तब भी हम आँखोंपर पट्टी बाँधे सुरक्षित हैं, उसे कोई मार नहीं सकता। अब रहे शल्य। रहेंगे, उसकी बुराईपर दुष्टि नहीं डालेंगे। गीतामें भगवान्

भाग ९० \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* श्रीकृष्णका पक्ष यह है कि जहाँपर विकृति है, वहाँपर आँखोंकी पट्टी खोल तुम्हें भस्म कर दूँगी। उससे सारा कोई भी सम्बन्ध क्यों न हो, उसे तो नष्ट कर ही देना पाप ही समाप्त हो जाता। पर यह कैसी विडम्बना है चाहिये; क्योंकि विकृति-तो-विकृति ही है। कि गान्धारी पापको अमर बनानेके लिये आँखोंकी पट्टी गान्धारीके मनमें गर्व है कि मैं तो पतिव्रता हूँ। मैं खोलनेका व्रत लेती हैं! अपने पातिव्रत्यके बलपर उसे अपने पुत्रको मरने नहीं दूँगी। यही मोह है। मोह कितना अमर बनानेपर तुली हुई हैं, जो दूसरोंके पातिव्रत्यको नष्ट बलवान् है! सती गान्धारी इसी मोहके आक्रमणसे नहीं करनेपर तुला रहता है! पर क्या वे अपनी इच्छामें सफल बचीं। उनको विश्वास हो गया कि वे अपने पातिव्रत्यके हो पायीं? बलपर दुर्योधनको मरनेसे बचा लेंगी। धर्मके साक्षात् घनीभूतरूप श्रीकृष्णके रहते क्या गान्धारी भी अपने धर्मके द्वारा यही करना चाहती अधर्म अमर बन सकता था? विजय तो धर्मकी ही होनी हैं, जो संसारमें कभी नहीं हुआ। वे दुर्योधनसे कहती थी। 'महाभारत' घोषणा करता है—'यतो धर्मस्ततो हैं—'बेटा! तू वस्त्ररहित होकर मेरे सामने आ जाना, मैं जय:।' दुर्योधन भी सोचता था कि जीत उसकी होगी; अपनी आँखोंसे पट्टी खोलकर तुझे अमर बना दूँगी!' क्योंकि ब्रह्मचर्य, तप, दान, पुण्य और पातिव्रत्यरूप धर्म दुर्योधन तो आनन्दमें डूब गया, पर जब यह समाचार उसीकी तरफ है। पर 'महाभारत' में एक वाक्य और पाण्डवोंके खेमेमें पहुँचा, तो वहाँ मायूसी छा गयी। कह दिया गया—'यत: कृष्णस्ततो धर्म:।' जिधर कृष्ण सोचने लगे कि जब गान्धारी-जैसी पतिव्रताने ऐसा व्रत हैं, उधर धर्म है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिधर ले लिया है, तब क्या होगा? पर श्रीकृष्ण मुसकराकर कृष्ण, उधर धर्म और जिधर धर्म, उधर विजय; पर विजय बोले-अगर दुर्योधन वस्त्ररहित होना जानता होता और तो कौरव पक्षकी ओर दिखायी पड़ रही है—दुर्योधन नग्न गान्धारी आँखोंकी पट्टी खोलना जानती होतीं, तो यह होकर अपनी माता गान्धारीके पास अमर बननेके लिये अनर्थ ही क्यों होता? दुर्योधन नग्न होना कहाँसे जाने, जा रहा है, पर क्या गान्धारी दुर्योधनको अमर बना पायीं ? वह तो दूसरोंको नग्न करना जानता है। उसने द्रौपदीको किंवदन्ती है कि श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नारद दुर्योधनके सामने आ जाते हैं। वह सारे खिड़की-दरवाजोंको नग्न करनेकी चेष्टा की, इसीसे महाभारतकी लड़ाई हुई। स्वयं नग्न होनेका तात्पर्य है अपने दोष देखना और उसे बन्दकर नग्न होकर अपनी माँके पास सावधानीसे जा रहा स्वच्छ करनेकी चेष्टा करना तथा दूसरोंको नग्न करनेका है कि कहीं कोई उसे देख न ले। जब वह नारदको देखता अर्थ है—दूसरोंके दोष देखना, दूसरोंको नीचा दिखानेकी है तो लजाकर बैठ जाता है। अब, सन्तके सामने कहाँ चेष्टा करना। दुर्योधनमें आत्मदोष-दर्शनकी प्रवृत्ति ही उसे अपना दोष प्रकट करना चाहिये था और कहाँ नहीं है, वह केवल परदोष-दर्शन ही करता है। अत: लजाकर छिपनेकी चेष्टा करता है। नारद मुसकरा पड़े! वह नग्न कैसे हो सकेगा? उधर गान्धारी पतिव्रता तो बोले-भलेमानुस! जब मेरे सामने इतना संकोच कर रहे हो, तब माँके सामने क्या होगा, कुछ तो कपड़ा पहन हैं, पर उन्हें आँखोंकी पट्टी खोलना कहाँ आता है ? यह सही है कि उनकी आँखोंमें ऐसी शक्ति है कि चाहें तो लो, क्या बढ़िया सलाह है, यह एक व्यावहारिक सलाह वे किसीको भस्म कर दें और चाहें तो किसीके शरीरको है—कुछ ढँक लेना और कुछ प्रकट करना। नारदकी ऐसी वज्र बना दें, पर वे आँखोंको खोलना जानें तब न? यदि सलाह दुर्योधनके स्वभावके अनुकूल ही थी और दुर्योधन जानती होतीं तो जिस समय भरी सभामें दुर्योधन ही क्यों, वह हम सबकी प्रवृत्तिके अनुकूल बात है तो द्रौपदीको नग्न करवा रहा था, वे धमकी दे सकती थीं जब दुर्योधन कमरमें कपड़ा लपेटकर माँके पास पहुँचा, Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma । MADE WITH LOVE BY Avinash Sharma । MADE WITH LOVE BY Avinash Sharma

संख्या ५ ] साधक कमलाकान्त दुर्योधनका सारा शरीर वज्र हो गया, केवल कमर ही शीघ्र नष्ट होना ही उचित है। रामायणमें भी हम यही जिसपर कपड़ा लिपटा था, दुर्बल रह गयी। श्रीकृष्णने बात देखते हैं। विभीषणकी तपस्या, उनकी साधना मुसकराकर कहा—देखो, पतिव्रताने अधर्मको अमर रावणको ही बल प्रदान करती थी। जबतक उन्होंने बनाना चाहा, पर अधर्म तो अमर हुआ नहीं, बल्कि रावण और कुम्भकर्णसे नाता तोड़कर हनुमान्जीके साथ नाता नहीं जोड़ लिया, तबतक उनका धर्म अधर्मको ही पतिव्रताने अधर्मके मरनेका उपाय जरूर बता दिया। पहले पुष्ट करता था। धर्मकी कसौटी यह है कि जीवनमें तो सोचना पड़ता कि दुर्योधनको मारनेके लिये उसपर कहाँ वार किया जाय, पर अब तो पता चल गया कि वैराग्य आना चाहिये—'धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।' कमरपर ही वार करना होगा। (रा०च०मा० ३।१६।१) धर्मसे जब वैराग्य आये तो समझ लीजिये हनुमान्जी आ गये और यदि धर्म करते-तो हमारा ब्रह्मचर्य, हमारा तप, हमारा दान और हमारा पुण्य यदि केवल मोह और अहंकारकी सृष्टिके करते मोह और अहंकार आये, तब समझ लेना चाहिये लिये हो, तो वह धर्म नहीं, अधर्म है और ऐसे अधर्मका कि वह धर्म नहीं, घोर अधर्म है। साधक कमलाकान्त ( श्रीरामलालजी ) शस्यश्यामला बंगभूमिके निवासियोंके हृदयमें भगवती आप मोक्षदायिनी हैं, आप सृष्टि, पालन और संहार कालीकी उपासनाकी सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। करनेवाली महाशक्ति हैं। आप मुण्डोंकी माला धारण महात्मा रामप्रसाद सेन, साधक कमलाकान्त और श्रीरामकृष्ण करनेवाली हैं, आपके भालमें बालचन्द्र शोभित है; आप पार्वती हैं, भवानी हैं, भगवान् शिवकी अभिन्न परमहंसने शक्तिकी उपासना-समृद्धि बढ़ानेमें असाधारण योगदान दिया। तीनों-के-तीनोंने जगदीश्वरीके चरण-आत्मा हैं; आप जया हैं, आप विकरालरूपधारिणी— कमलोंमें मन संस्थितकर त्राणकी याचना की। कमलाकान्तने प्रचण्डा हैं। आप ही कालका भी संहार करनेवाली निवेदन किया— महामाया हैं, मुझे यमके त्राससे उबार लीजिये। हे खुले केशोंवालीं करालवदना! शिवकी हृदयेश्वरी! मैं उमे! त्राण दे मा शिवे! त्राण दे। मृत्युरूपी संसार-सागरसे आपकी कृपासे पार उतरनेमें तृषित चातक मत निरखि नव घन तव चरण गो। समर्थ हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।' साधक कमलाकान्तने आमि दुराचारी, शरण तोमारि, निस्तार ए घोर भवे॥ जगदीश्वरीके चरणोंमें अपने हृदयकी भक्ति उँडेलकर जनम-हारिणी, सृष्टि-स्थिति-संहारिणी। तुमि तथा उनकी आराधनाकर भवसागरमें मृत्युभयसे त्राण शशधरभाले! गिरिजा भवानी प्रचण्डा शमन-दलनी 'कमलाकान्त' कृतान्तभये। पाया । साधक कमलाकान्तका जन्म बर्दवान जनपदमें विगलितकेशि, तरि भवराणि, 'हे माँ पार्वती! उमादेवि! आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवती गंगाके तटपर स्थित अम्बिका कालना ग्राममें मैं प्याससे विकल चातककी तरह आपके चरणरूप बंगीय संवत् ११७० में एक ब्राह्मण-परिवारमें हुआ नवजलदकी ओर आशापूर्ण दृष्टिसे देखता हूँ। मैं था। पाँच सालकी ही अवस्थामें उन्हें पिता छोड़कर दुराचारी पापी हूँ, फिर भी आपके शरणागत हूँ; इस परलोक चले गये। कमलाकान्त दो भाई थे। माँने

बड़े स्नेहसे उनका पालन-पोषण किया। उनकी जीविका

भीषण संसारसे आप मुझे उबार लीजिये। हे माँ!

४० कल्प	प्राण [भाग ९०		
*****************************	<u>********************************</u>		
यजमानी वृत्तिसे चलती थी। भू-सम्पत्तिका अभाव	मन्द-मन्द मुसकान और कटाक्ष-शरसे (मनसिजको		
था। अम्बिका कालनासे जीवन-निर्वाहके लिये माँके	भी भस्म करनेवाले) शिवका मन अनायास ही मुग्ध		
साथ कमलाकान्त अपने मामा नारायणचन्द्र भट्टाचार्यके	हो उठता है। अरुणवर्णके नखोंकी किरणोंकी चन्द्रमाके		
घर चान्नाग्राम चले आये। चान्नामें ही उनकी शिक्षा-	समान शुभ्र ज्योतिसे आवेष्टित जगदीश्वरीके पदतल		
दीक्षा सम्पन्न हुई। अपनी मॉॅंके चरणोंमें साधक	ऐसे दीख पड़ते हैं, मानो (स्वच्छ जलधारामें) लाल		
कमलाकान्त बड़ी श्रद्धा-निष्ठा रखते थे। वे उनकी	वर्णके कमल विकसित हों। कमलाकान्तका कथन है		
प्रत्येक आज्ञाका पालन बड़ी तत्परतासे करते थे।	कि भगवतीके श्रीचरणोंके गुण-महत्त्वका मर्म स्वयं		
उन्होंने एक बार बाल्यकालमें ही माँके प्रति निवेदन	कमलाकान्त (विष्णु) भी नहीं समझते; तब भला,		
किया था—'माँ! आप मेरे लिये साक्षात् आनन्दमयी	साधारण मनुष्य मैं क्या समझ सकता हूँ।'		
जगदम्बा हैं। मैं उन्हें और आपको सर्वथा अभिन्न	अपनी माँके आग्रहसे वे सपरिवार आर्थिक संकट		
मानता हूँ।'	दूर करनेके लिये अम्बिका कालना चले आये। उस		
उन्होंने माँकी आज्ञाके अनुसार लाकुडी ग्रामके	गाँवमें उनके धनी-मानी शिष्य रहते थे। थोड़े समयके		
एक सुपात्र ब्राह्मणकी कन्याका पाणिग्रहणकर	बाद माँ रोगग्रस्त हो गयीं। माँने समझाया कि 'मेरे		
गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। वे जगदम्बाकी साधनामें	देहावसानके बाद तुम्हें पूरे परिवारके प्रतिपालनमें लगे		
लग गये। चान्नाग्राम खड्गेश्वरी नदीके तटपर स्थित	रहना चाहिये; वैराग्य नहीं ग्रहण करना चाहिये।'		
है। उस ग्राममें विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें बैठकर वे	उन्होंने माँकी इस आज्ञाका जीवनभर पालन किया।		
जगदम्बाके चरणकमलोंमें निवेदन किया करते थे—	माँकी मृत्युके बाद वे पुनः चान्ना चले आये। वहाँ		
'माँ! आपके चरणाम्बुज देख-देखकर मैं प्राणधारण	उनकी पत्नीका भी देहान्त हो गया। उन्होंने घरका		
करता हूँ। इस संसारमें आपको छोड़कर कोई दूसरा	प्रबन्ध भाईके हाथमें सौंप दिया और स्वयं देवीकी		
अपना है ही नहीं।' उनकी देवीके प्रति संस्तुति है—	उपासनामें लग गये; पर माँकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने		
अनुपम रूप, अनूप श्यामातनु हेरिये नयन जुड़ाय।	कभी घरका त्याग नहीं किया। उन्होंने देवीके चरणोंमें		
सजल कादम्बिनी जिनिये कुन्तल, तार माझे सौदामिनी खेलाय॥	निवेदन किया—		
अञ्जन अधरे अतसी मुकुता फल, नीललोहित पद्म भ्रमे अलिकुल धाय।	आमारके आछे, करुणामयी!		
क्षणे-क्षण हास्य कटाक्ष-शरे शिवेर मन सहजे भुलाय॥	ओ पदे विपद नाशे, नितान्त भरसा ओइ।		
मृगाङ्क अरुण चरण-नख-किरणे, रक्तोत्पल जिनि पदतल ताय।	कखन-कखन मने करि, धन-परिजन कोथा रवे॥		
कमलाकान्त अन्त ना जाने गुण श्रीचरण, मानव कि पाय॥	कोथारवे, से भाव थाकये कै। मजिये विषय-विषे,		
'कालीका रूप अनुपम है। श्यामाके अनूप शरीरको	दिन गेल रिपु-वशे, आपनारि क्रिया दोषे॥		
देखकर नेत्र शीतल होते हैं। उनके पूरे शरीरको	अशेष यन्त्रणा सइ।		
वेष्टित किये हुए काले-काले केश-जालमें उनका	सुकृति ये जन, से साधने पावे श्रीचरण,		
रूप ऐसा दीख पड़ता है, मानो सजल मेघमालामें	अकृति अधम आमि, कि गति तारिणी वइ।		
दामिनी चमक रही है। उनके अधरकी लालिमा तीसीके	कमलाकान्तेर आश, हवे तव पदे दास,		
फूल और मुक्ताफलकी शोभा धारण करती है; नीले	किंतु मम मन अवश, आमि त तादृश नइ॥		
 और लाल कमल समझकर भ्रमर-समूह अधरोंकी	'हे करुणामयी माँ! यहाँ—इस जगत्में मेरा कौन		
ओर दौड़ पड़ता है। क्षण-क्षण निरन्तर श्यामाकी	है ? आपके चरणोंमें ही मेरी विपत्तिका नाश होगा;		

ख्या ५] साधक कमलाकान्त ४						
******************************	<u>*********************************</u>					
मुझे तो एकमात्र आपके चरणोंका ही भरोसा है।	कमलाकान्तेर कथा, मारे बलि मनेर व्यथा,					
कभी-कभी यह बात मनमें आती है कि धन और	जपेर माला, झूलि, काँथा, जपेर घरे रइल टांगा॥					
परिवारके लोग रहेंगे क्या? क्या वे इसी तरह सदा	'हे श्यामा! आपके लाल-लाल कोमल दोनों					
बने रहेंगे? विषय-विषमें अनुरक्त होनेके नाते मेरे	चरणोंके सिवा मेरे लिये और कुछ भी नहीं है।					
दिन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओंकी	सुनता हूँ कि उन्हें भगवान् शंकरने पहलेसे अपने					
अधीनतामें बीत गये; मैं अपने ही कर्मोंके दोषसे	अधिकारमें कर लिया है, मैं इससे हतोत्साह हो उठा					
सारी यातनाएँ सहता हूँ। जो पुण्यात्मा है, वह साधनके	हूँ। ये सब जाति-भाई, सुत-स्त्री आदि सुखके समयके					
द्वारा आपके श्रीचरणकी प्राप्ति कर पाता है; किंतु मैं	साथी हैं, विपत्तिके समयमें कोई किसीका भी नहीं					
तो पापी और अधम हूँ, साधनहीन हूँ। मेरा तो	होता। घर-बाड़ी तथा इस ओड़गाँवकी ऊँची भूमि					
आपको छोड़कर कोई दूसरा है ही नहीं। मैं तो यही	भी अन्त समय मेरा साथ नहीं देगी। आप अपने					
आशा लगाकर बैठा हूँ कि मैं आपके चरणोंका दास	स्वभाव-गुणसे ही अपना बना लेती हैं। यदि इस					
बनूँगा; परंतु मनपर मेरा अधिकार नहीं है। वह अत्यन्त	गुणके वशीभूत होकर मुझे अपना लेती हैं तो मुझपर					
चंचल है। मैं आपका दास भी बननेयोग्य नहीं हूँ।'	कृपादृष्टि कीजिये। जप करनेसे आपकी प्राप्ति नहीं					
महात्मा कमलाकान्तका सम्पर्क चार व्यक्तियोंके	हो सकती; यह तो भूतको सिद्ध करनेकी-सी बात					
लिये बड़े महत्त्वका कहा जाता है। वे थे विश्वेश्वर	है, मुख्य वस्तु तो आपकी करुणा है। माँ! मैं तो					
डाकू, शिष्य केनाराम चट्टोपाध्याय और बर्दवानके	अबोध बालक हूँ, केवल माँसे ही अपने मनकी					
महाराजा तेजचाँद तथा उनके पुत्र युवराज प्रतापचाँद।	व्यथा कहता हूँ। माँकी कृपा मिलेगी ही। जपमाला,					
साधक कमलाकान्तके चरणदेशमें उन चारोंकी प्रणति	झोली, गुदड़ी तो जपके घरमें टॅंगी-की-टॅंगी ही है।					
अपने-अपने ढंगसे निराली थी। विश्वेश्वर—विशु प्रसिद्ध	मुझे तो आपकी ही करुणाका भरोसा है।'					
डाकू था। एक समयकी बात है। कमलाकान्त गैरिक	विशु-पर उनके उपर्युक्त भक्तिपूर्ण गानका प्रभाव					
परिधान धारणकर खड्गेश्वरी नदी पारकर चान्नासे	पड़ा। वह विमुग्ध हो गया। 'आप कौन हैं?' विशुका					
सात–आठ कोसकी दूरीपर स्थित अमरारगढ़ स्थानपर	प्रश्न था। साधक कमलाकान्तने कालीके किंकरके					
अपने शिष्य केनारामसे मिलने जा रहे थे। कई गाँवोंको	रूपमें अपना परिचय दिया।					
पारकर ओड़ग्रामके निकट पहुँचते ही उन्होंने देखा	'कमल ठाकुर!' विशु चिकत हो गया। दौड़कर					
कि कई लोग उनका पीछा कर रहे हैं। शाम हो	उसने कमलाकान्तके चरण पकड़ लिये। विशु डाकूके					
गयी थी। पश्चिममें लालिमा थी। सूर्य अस्ताचलको	साथी आश्चर्यमें पड़ गये। विशुने साथियोंसे कहा					
जा चुके थे। वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे	कि 'मैं तुम लोगोंका साथ नहीं दे सकता। कमल					
गीत गाकर जगज्जननीका स्मरण करने लगे—	ठाकुरके चरण जीवनभर नहीं छोड़ सकता। कालीका					
आर किछु नाइ श्यामा, तोमार केवल दुटि चरण रांगा।	नाम ही मेरा मन्त्र है।' कमलाकान्तके भी समझानेपर					
शुनि ताओ नियेछेन त्रिपुरारी, अतेव हलेम साहस भांगा॥	वह घर नहीं गया और आजीवन उन्हींकी सेवामें					
ज्ञातिबन्धु सुत-दारा, सुखेर समय सबाइ तारा।	रहकर उसने जगदीश्वरीकी आराधना की। बंगालका					
विपद-काले केउ कारो नय, घरवाड़ी ओड़गाँयेर डांगा॥	अभिनव अंगुलिमाल सदाके लिये धर्म और वैराग्यकी					
निज गुणे यदि राख, करुणा-नयने देख,	शरणमें आ गया, शक्तिका उपासक हो गया।					
नइले जप करे ये तोमाय, पाओया से सब कथा भूतेर सांगा।	केनाराम चट्टोपाध्याय अमरारगढ़के निवासी थे।					

भाग ९० कमल ठाकुरमें उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा और निष्ठा थी। धूलि सिरपर चढ़ाकर उन्हें प्रणाम किया और चले वे कभी-कभी चान्ना आकर विशालाक्षीके मन्दिरमें गये। कमलाकान्तके जीवनमें बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण साधक कमलाकान्तसे मिला करते थे। कमल ठाकुर घटनाओंका समावेश पाया जाता है। एक समयकी केनारामको अपनी कृपा और स्नेह-वृष्टिसे कृतार्थ करनेके लिये अमरारगढ जाया करते थे। बात है, वे अमरारगढ़में थे। केनाराम कहीं बाहर बर्दवानके महाराजाकी साधक कमलाकान्तके गये थे। कमलाकान्त श्यामाघरमें बैठकर देवीका चरणदेशमें महती अभिरुचि थी। महाराजाके बड़े चिन्तन कर रहे थे। केनारामकी लडकीने कहा अनुरोधपर उन्होंने बर्दवानमें बाँका नदीके तटपर स्थित कि 'बाबा! आज जलानेकी लकड़ी नहीं है।' उसे कोटालहाटमें नवनिर्मित श्यामा-मन्दिरमें रहना स्वीकार इस बातका पता नहीं था कि उसके पिता कहीं बाहर चले गये हैं। कमल ठाकुर विशुको साथ कर लिया। एक दिन महाराजाके मनमें यह सन्देह उठनेपर कि मिट्टीकी मूर्तिसे किस तरह देवी-शक्तिका लेकर ईंधन लेने चल पड़े। हाथमें टाँगी थी। लौटते आविर्भाव हो जाता है, कमल ठाकुरने समझाया कि समय लोगोंने देखा कि हाथमें टाँगी लेकर ठाकुर सभी वस्तुओंमें महाशक्तिका अस्तित्व है, इसका आगे-आगे चल रहे हैं और विश् कन्धेपर ईंधन साक्षात्कार करना अनेक जन्मोंके पुण्यका फल है, रखकर उनके पीछे-पीछे आ रहा है। गाँवके लोग जन्म-जन्मके भाग्योदयका प्रतीक है। सच्चिदानन्दरूपका इस असाधारण घटनासे आश्चर्यमें पड़ गये। चारों 'सोऽहं' भावमें उदय होनेपर महाशक्तिका आविर्भाव ओर इसी बातकी चर्चा थी। केनारामने घर आकर समस्त वस्तुओंमें प्रतीत होता है। बडा पश्चात्ताप किया। अपने कोटालहाटवाले निवास-स्थानमें ५३ सालकी साधक कमलाकान्तका जीवन पूर्णरूपसे जगदम्बाके चरणोंमें समर्पित था। एक बार उनके अस्वस्थ हो अवस्थामें बँगला सम्वत् १२२३ में उन्होंने महाप्रस्थान जानेपर महाराजा तेजचाँद उन्हें देखने गये। वे मिट्टीसे किया। उनका एक पद है— बने कच्चे घरमें रहते थे। महाराजाकी इच्छा थी कि आमार गति कि हवे, तारा जाने, मा जाने। घर पक्का बन जाय तो शरीर ठण्डक आदि ऋत्-तारा बिने आर, इहकाल, परकालेर कथा के जाने॥ विकारोंसे कम प्रभावित होगा। कमल ठाकुरने बड़े आमि यत निपुण साधने, विदित जननीर चरणे। ही संतोषसे कहा कि 'मेरी माँ श्मशानमें रहती हैं, कत दिने हवे त्राण, कमलाकान्तेर ए मोर भवबन्धने॥ कंकाल ही उनके आभूषण हैं। अब आप ही सोचिये 'मेरी क्या दशा होगी, यह बात तारा जानती कि मुझे पक्के घरकी आवश्यकता है या नहीं।' है, मॉंको भी ज्ञात है। इस समयकी एवं दूसरे समय— भूत, भविष्यकालकी बात माँके सिवा दूसरा कौन इसपर महाराजाने और आग्रह नहीं किया । चलते समय केवल यह निवेदन किया कि यदि किसी जान ही सकता है। मैं साधनमें कितना सफल हूँ, यह बात जननीके चरणोंपर प्रकट है। न जाने कितने वस्तुकी आवश्यकता हो तो सेवामें अविलम्ब भेज दी जाय। कमल ठाकरने कहा कि 'एक मिट्टीका दिनोंमें इस भवबन्धनसे मेरा उद्धार होगा?' कोसा चाहिये; पहला थोड़ा-सा फूट गया है, इसलिये बंगीय शक्ति-साधनाके क्षेत्रमें साधक कमलाकान्तका पानी पीते समय जल गिर जाता है।' महाराजा नाम अमर है। उन्होंने जगज्जननी जगदीश्वरी महाकालीके आमानर्सचित्रात छोडरस्ये।dउड्सेंतेverमत्तापृत्रसुअस्टेट.चुसुगdhaनतयामृतास्माकेट प्रणीतामें खेळ्य ह्यार्थक्रिक्रसिक्षेत्रसिक्

साधनोपयोगी पत्र संख्या ५ ] साधनोपयोगी पत्र वहाँ तो ज्यादा अभ्यास भीतरीका ही करना चाहिये। (१) भगवद्धिक्तसे हानि नहीं होती अन्तमें आपकी माताजीसे भी मेरी प्रार्थना है कि प्रिय बहन! आपका पत्र मिला। आप लडकपनसे वे इस वहमको छोड़ दें। भगवान्की भक्ति और पूजा स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं और भगवान्की भक्ति-ही यथाशक्ति पूजा-पाठ तथा जप करती हैं। आपके दो पुत्र चले गये। अब तीसरा बच्चा हुआ है। पर आपकी पूजासे लोक-परलोकमें कल्याण ही होता है। उसको माताजी कहती हैं कि 'इस पूजा-पाठके कारण ही पहले रोकना, भक्ति करनेवालेका विरोध करना पाप है और बच्चे मर गये थे। तुम्हारे पूजा-पाठसे इस बच्चेका भी उससे परिणाममें दु:ख होता है। घरवालोंका तो यह परम धर्म होना चाहिये कि वे समझाकर, विनय करके, सेवा अनिष्ट हो जायगा।' सो यह उनका भ्रम है। भलेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता। भगवान्की भक्ति, करके सभी घरवालोंको भगवान्की भक्तिके मार्गमें भगवान्के नाम-जप तथा अपने घरमें भगवान्की पूजा लगायें। वही सच्चा घरका मित्र, बन्धु और हितैषी है; करनेका सभीको अधिकार है। स्त्री हो या पुरुष-यह जो अपने घरवालों, मित्रों और बन्धुओंको भगवान्की सभीके लिये मंगलकारी कार्य है। भगवान्की भक्तिसे ओर लगाता है— पुत्रोंके मरनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हानि-लाभ, तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो। सुख-दु:ख, जीवन-मरण सब प्रारब्धके फल हैं। जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥ भगवद्भक्तिसे तो सकामभाव होनेपर ये प्रारब्धके विधान शेष भगवत्कृपा। उलटे टल सकते हैं। न टलें तो भी अमंगल तो होता (२) ही नहीं। मनुष्य-जीवनकी सफलता ही भगवान्की जगत् दुःखकी खान है प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। भैया! भगवान्को भक्तिमें है। आपको बड़ी नम्रता, विनय तथा सेवा करके माताजीको यह बात समझानी चाहिये। विवाद-झगड़ा छोड़कर यह जगत् दु:खकी खान है। भगवान्ने इसे कभी नहीं करना चाहिये। 'दु:खयोनि' बतलाया है। दु:खोंसे छूटनेका एक ही फिर भी यदि माताजीको इससे बहुत ही दु:ख उपाय है—बस, यही कि अपनेको भगवान्के प्रति सब प्रकारसे समर्पण कर देना। तभी सच्चा सुख, अपार होता हो तो आप धीरे-धीरे अपनी भक्तिके भावको मनके अन्दर ले जाइये। मनसे आप भगवानुको याद शाश्वती शान्ति मिल सकेगी। संसारकी नजरमें परिस्थिति करेंगी, उनकी मानसिक पूजा करेंगी तो उससे कोई पलटनेसे दु:ख नहीं मिटेगा, दु:खोंके हेतुमात्र बदल आपको रोक नहीं सकता। न किसीको पता ही लग जायँगे। दु:खालयमें दु:ख तो रहेगा ही। भगवान्की इस सकता है। फिर किसीकी अप्रसन्नताका कोई प्रश्न ही नाट्यशालामें चतुर एक्टरकी भाँति खेलते रहो। भगवान् नहीं रह जायगा। और वास्तवमें जितना महत्त्व मानसिक जैसा कुछ स्वॉॅंग दें, जो कुछ प्रदान करें, उसीको सानन्द सिर चढ़ाओ। इस पार्थिव जीवनमें भगवान्को छोड़कर भावोंका है, उतना बाहरी पूजाका है भी नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं मानना चाहिये कि मैं बाहरी पूजाका कुछ भी नित्य और आनन्द नहीं है। भगवान्से ही आनन्दका झरना बहता है, उसमें नहाओ, कृतार्थ हो निषेध करता हूँ। बाहरी पूजा भी अवश्य करनी चाहिये, परंतु भीतरीके साथ-साथ। और जहाँ-कहीं उससे कोई जाओगे। ये भावुकताके शब्द नहीं हैं, सत्य तथ्य है। उपद्रव खड़ा होता हो, (चाहे वह किसीकी भूलसे हो) तुम्हारे शरीर और मन स्वस्थ होंगे। भगवानुका

िभाग ९० \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* स्मरण किसी भी बुद्धिसे अवश्य करते रहना। मनसे निकाल ही देनी चाहिये। भगवान् परम दयालु हैं। उनकी कृपापर पूर्ण विश्वास करके उन दयामयसे प्रार्थना शेष प्रभुकुपा। करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। (3) ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र विचित्र प्रश्न मिला। आपके प्रश्नोंके संक्षिप्त उत्तर निम्नलिखित हैं— प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र १. ईश्वर सत्य है और सर्वत्र है। तुकाराम, मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है— नामदेव, सूरदास, तुलसीदास, गौरांग महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण १. भगवान्को किसने उत्पन्न किया? आपका परमहंस आदिपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। शास्त्रोंमें भगवान् अजन्मा, है। जो भी भगवानुका सच्चा भक्त हो, वह आज भी अविनाशी, नित्य, सनातन एवं सबके मूल तथा भगवान्के दर्शन प्राप्त कर सकता है। सर्वाधार होनेसे स्वयं निर्मूल, आत्ममूल, निराधार, आत्माधार एवं परात्पर कहे गये हैं—'स आत्ममूलोऽवत् २. लक्ष्मी और कीर्ति तो प्रारब्धजन्य पुण्यके फलस्वरूप बढ़ती हैं। इस जीवनमें जो दम्भ, छल, कपट मां परात्पर:।' उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। आदि करते हैं, वे कोई भी हों और लोग उन्हें कुछ भी उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु कहें या समझें, अपने कर्मोंके फलस्वरूप अनन्त दु:ख सदा रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती तो आगे चलकर उन्हें भोगने ही पड़ेंगे। है ? जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार-

३. धन, कीर्ति, स्वास्थ्यादि भगवानुकी प्रार्थनासे भी मिल सकते हैं। प्रार्थनाके लिये न कोई प्रकार है, न स्थान और न समय। पूर्ण विश्वाससे, अनन्यभावसे जो सहज कातर-प्रार्थना होती है, वह कभी व्यर्थ नहीं जाती। प्रार्थना हृदयसे उठती है, उसे पुस्तकके द्वारा सीखा नहीं जाता। बँधे शब्द प्रार्थना नहीं हैं। भगवानुके प्रति अपने हृदयके सच्चे भावोंका पूर्ण विश्वाससे निवेदन करना ही

४. सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेसे

घोरतर हो जायगा। अत: आत्महत्या-जैसी बात तो

प्रार्थना है।

एकाग्र होने लगेगा।

प्रत्यवाय (एक प्रकारके दोष)-की प्राप्ति होती है। ५. मनकी एकाग्रता तो अभ्याससे होती है। धैर्य एवं नियमपूर्वक अभ्यास करते रहनेसे धीरे-धीरे मन ६. आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। इससे किसी कष्टकी निवृत्ति नहीं होती। प्रारब्ध तो आगे भी भोगना ही पडेगा और आत्महत्याके पापके फलसे वह और

कार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान् है—'मूले मूलाभावादमूलं मूलम्' (सांख्यदर्शन)। २. सृष्टिरचना भगवान्का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्ष:स्थलपर युग-युगसे जो अनन्त तरंग-मालिकाएँ उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है ? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका

क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहें भगवान्की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दु:ख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दु:खका भागी नहीं होता। दु:ख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें

नहीं। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

संख्या ५ ]

## व्रतोत्सव-पर्व मं० २०७३, शक १९३८, सन २०१६, सर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋत,

सर्व २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूच उत्तरायण, प्राप्न-ऋतु, आपाढ़ कृष्णपक्ष							
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि			
प्रतिपदा दिनमें ४।४० बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ७। ४५ बजेतक	२१ जून	<b>सायन कर्कराशि</b> का सूर्य दिनमें ११।४२ बजे, <b>मूल</b> दिनमें ७।४५ बजेतक।			
द्वितीया " ४। ४६ बजेतक	बुध	पू० षा० 🗤 ८।४३ बजेतक	२२ ,,	भद्रा रात्रिशेष ४। ३४ बजेसे, मकरराशि दिनमें २।५० बजेसे, आर्द्रा-			
				नक्षत्र का सूर्य प्रातः ६। २१ बजे।			
तृतीया " ४। २२ बजेतक	गुरु	उ० षा० 🗥 ९।११ बजेतक	२३ ,,	भद्रा दिनमें ४। २२ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय			
				रात्रिमें ९।७ बजे।			
चतुर्थी " ३। २८ बजेतक	शुक्र	श्रवण 😗 ९।१० बजेतक	२४ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें ८।५५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ८।५५ बजे।			
पंचमी " २। ९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा 😗 ८।४१ बजेतक	२५ ,,	x x x x			
षष्ठी 🕠 १२। २७ बजेतक	रवि	शतभिषा 😗 ७।५३ बजेतक	२६ ,,	भद्रा दिन १२। २७ से रात्रिमें ११। २७ बजेतक, मीनराशि रात्रि १।१ बजेसे।			
सप्तमी 🗤 १०। २६ बजेतक	सोम	पू० भा० प्रातः ६।४३ बजेतक	२७ ,,	कालाष्टमी।			
अष्टमी 🗥 ८ । ११ बजेतक	मंगल	उ० भा० प्रातः ५ ।१९ बजेतक	२८ ,,	<b>मेषराशि</b> रात्रिमें ३।४५ बजेसे, <b>पंचक समाप्त</b> रात्रिमें ३।४५ बजे।			
		रेवती रात्रिशेष ३।४५ बजेतक		मूल प्रातः ५।१९ बजेसे।			
नवमी प्रात: ५।४७ बजेतक	बुध	अश्विनी रात्रिमें २।५ बजेतक	२९ ,,	<b>भद्रा</b> दिनमें ४। ३३ बजेसे रात्रिमें ३। १९ बजेतक, <b>मूल</b> रात्रिमें २। ५			
दशमी रात्रिमें ३।१९ बजेतक				बजेतक।			
एकादशी '' १२। ४९ बजेतक	गुरु	भरणी 😗 १२।२५ बजेतक	३० ,,	योगिनी एकादशीव्रत (सबका)।			
द्वादशी 🦙 १०। २६ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका '' १०।५० बजेतक	१ जुलाई	वृषराशि प्रातः ६।१ बजेसे।			
त्रयोदशी" ८ ।१२ बजेतक	शनि	रोहिणी 🗤 ९।२६ बजेतक	२ ,,	भद्रा रात्रिमें ८। १२ बजेसे, <b>शनिप्रदोषव्रत</b> ।			
चतुर्दशी सायं ६ ।११ बजेतक	रवि	मृगशिरा '' ८।१४ बजेतक	३ ,,	भद्रा दिनमें ७।१२ बजेतक, मिथुनराशि दिनमें ८।५० बजेसे।			
अमावस्या दिनमें ४। २९ बजेतक	सोम	आर्द्रा 😗 ७। २४ बजेतक	४ ,,	सोमवती अमावस्या।			
सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षाऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष							
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि			
प्रतिपटा टिनमें ३।१० ब्रजेतक	मंगल	पनर्वस सायं ६। ५३ बजेतक	५ जलार्द	कर्कगणि दिनमें १।१ बजेसे।			

प्रतिपदा दिनमें ३।१० बर्जतक|मगल| पुनर्वसु साय ६।५३ बर्जतक| ५ जुलाई |**कर्कराशि** दिनमें १।१ बर्जसे। **श्रीजगदीश रथयात्रा,** पुनर्वसुका सूर्य दिनमें ७।५६ बजे, **मूल** सायं ६।४८ बजेसे। द्वितीया '' २।१५ बजेतक बुध पुष्य 🗤 ६ । ४८ बजेतक ξ " भद्रा रात्रिमें १।५३ बजेसे, सिंहराशि रात्रिमें ७।१३ बजेसे। तृतीया 🕶 १।५१ बजेतक 🕂 गुरु आश्लेषा रात्रिमें ७।१३ बजेतक 9 "

चतुर्थी 😗 १।५६ बजेतक | शुक्र मघा '' ८। ९ बजेतक भद्रा दिनमें १। ५६ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल 6 11 रात्रिमें ८। ९ बजेतक। पंचमी 😗 २।३४ बजेतक शनि पु० फा० ११९। ३४ बजेतक 9 " कन्याराशि रात्रिमें ४। २ बजेसे। षष्ठी 😗 ३। ३८ बजेतक | रवि उ० फा० ११ ११ । २६ बजेतक । १० ११ स्कन्दषष्ठी।

सप्तमी सायं ५। १० बजेतक सोम हस्त १११।४२ बजेतक **भद्रा** सायं ५।१० बजेसे। चित्रा रात्रिशेष ४।१२ बजेतक भद्रा प्रातः ६।४ बजेतक, तुलाराशि दिनमें २।५७ बजेसे। अष्टमी गदा ५८ बजेतक मंगल १२ " स्वाती अहोरात्र नवमी रात्रिमें ८ ।५८ बजेतक बुध १३ "

स्वाती प्रात: ६।५० बजेतक वृश्चिकराशि रात्रिमें २।४५ बजेसे। दशमी ''१०।५९ बजेतक । गुरु १४ "

भद्रा दिनमें ११।५५ बजेसे रात्रिमें १२।५० बजेतक, श्रीहरिशयनी एकादशी १११२।५० बजेतक शुक्र विशाखा दिनमें ९।२४ बजेतक

एकादशीव्रत (सबका)।

शिनि अनुराधा 😗 ११ । ४५ बजेतक | १६ 😗

द्वादशी ''२।२२ बजेतक चातुर्मास्यव्रत प्रारम्भ, **कर्कसंक्रान्ति** रात्रिमें ९।५ बजे, **वर्षाऋतु** एवं

दक्षिणायन प्रारम्भ, मूल दिनमें ११। ४५ बजेसे।

प्रदोषव्रत, धनुराशि दिनमें १। ४६ बजेसे। त्रयोदशी ''३। ३० बजेतक रिव ज्येष्ठा 🗤 १। ४६ बजेतक | १७ 🗤

चतुर्दशी रात्रिशेष ४। १० बजेतक सोम मूल दिनमें ३। २० बजेतक, भद्रा रात्रिशेष ४। १० बजेसे। मूल ११ ३। २० बजेतक | १८ ११

भद्रा दिनमें ४। १४ बजेतक, गुरुपूर्णिमा, मकरराशि रात्रिमें १०। ३४ बजेसे। पूर्णिमा ''४। १८ बजेतक मंगल पू० षा० ११४। २५ बजेतक

कृपानुभूति हुईं। तदुपरान्त अपने निवास-स्थानपर आ गयीं। सच्चे (१)

जब माँने मुझे मौतके मुँहसे बचाया हृदयसे पुकारनेपर माँ मौतके मुखसे अवश्य बचा लेती हैं।

करुणामयी माँकी कृपा-वर्षा तो सभी प्राणियोंपर समान-रूपसे हो रही है, परंतु उनकी कृपाका अनुभव

किसी विरले भाग्यशालीको ही हो पाता है। मुझे विगत वर्षोंमें माँकी कृपाका अनेक बार अनुभव हुआ है।

इनमेंसे एक घटना इस प्रकार है-बात लगभग चालीस वर्ष पुरानी है। जबलपुरकी

विजयादशमी प्रसिद्ध है। मेरी ननद एवं सासजीकी इच्छा

विजयादशमीका उत्सव देखनेकी हुई। उन लोगोंको साथ

लेकर मैं जबलपुर अपने मॉॅंके यहाँ गयी। हमने विजया-दशमीके दिन दुर्गा-प्रतिमाओंको भव्य शोभा-यात्राका दर्शन किया और विचार हुआ कि कल ग्वारीघाट जाकर नर्मदा-

स्नान करनेके पश्चात् दुर्गा-विसर्जनका दृश्य देखा जायगा। हम अगले दिन प्रात: ८ बजे घरसे रिक्शा करके ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। मार्गमें गलगला चौकपर

स्थित प्रसिद्ध देवी-मन्दिर मिला। हमलोगोंने वहाँ भगवती दुर्गाका दर्शन किया और मन-ही-मन माँसे निवेदन किया कि 'माँ! हम सब लौटते समय आपकी आरतीमें

सम्मिलित होंगी। तत्पश्चात् पुन: हम सब वहाँसे रिक्शाद्वारा ग्वारीघाटके लिये चल पड़ीं। रिक्शेकी सीटपर मेरी सास तथा ननद बैठी थीं एवं पटियेपर मेरे साथ मेरा भाँजा बैठा था। बादशाह

हलवाईके मन्दिरके पासवाले मोडपर नीचेकी ओरसे सहसा एक ट्रक आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह हमारे

रिक्शेको कुचल देगा। अचानक मेरे मुँहसे निकला—'माँ! हमारी रक्षा करो।' टुककी जोरदार टक्कर हुई और रिक्शेके

एक चक्केपर ट्रक चढकर रुक गया, जैसे किसी अज्ञात शक्तिने टुकको रोक दिया हो। रिक्शाका चक्का चकनाचूर

हो गया, परंतु हम चारों एवं रिक्शाचालक दूसरी ओर गिरे और सभी सुरक्षित बच गये। हमने हृदयसे भगवती जगदम्बाके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम किया। सकुशल हम सब ग्वारीघाटपर

प्रतिमा-विसर्जनके मनोहारी दृश्यको देखकर वापसी यात्रामें

भगवतीकी असीम कृपाका स्मरणकर आज भी मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। - श्रीमती प्रभा वैद्य

ईश्वरकृपासे जीवन-दान बात जून १९८५ ई० की है। मेरी माताजीके ट्यूमरका ऑपरेशन हुआ था। उन्हें कैंसर हो गया था।

जब ऑपरेशनके बाद उन्हें घर लाया गया तो उनकी स्थिति निरन्तर बिगडती ही जा रही थी। डॉक्टरोंने भी अत्यधिक प्रयास किया, किंतु स्वास्थ्यमें कोई परिवर्तन

(२)

नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद माताजीकी हालत बहुत

गम्भीर हो गयी। डॉक्टरोंने हमें बता दिया कि माताजी अब अधिक-से-अधिक एक महीना बचेंगी। हम सभी बहुत निराश हो गये; क्योंकि घरमें उनके अतिरिक्त और कोई घरकी सँभाल करनेवाला न था। पिताजीका पहले

ही स्वर्गवास हो चुका था। ऐसी विषम परिस्थितिमें मेरी बुआने मुझसे कहा कि मैं प्रतिदिन हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाया करूँ और चरणामृत लाकर माँको पिला दिया करूँ। अत: मैं उसी दिनसे हनुमान्जीके मन्दिरमें जल चढ़ाने जाता और

दुखी हृदयसे माँकी प्राण-रक्षाके लिये हनुमान्जीसे प्रार्थना करता तथा चरणामृत माँको पिलाया करता। मेरा छोटा भाई भी प्रतिदिन मॉॅंके समीप बैठकर रामचरितमानसका नियमित पाठ करता। हम अपनेको पूर्ण असहाय अनुभव करते थे। भगवान्से विनती करनेके अतिरिक्त मॉॅंके स्वास्थ्य-लाभका और कोई सहारा नहीं था। करुणावरुणालय सर्वेश्वर

ही एकमात्र आधार थे हमारे। सर्वान्तर्यामी प्रभुने हमारे मनकी भावनाको जान लिया तथा हमारी विनती भी स्वीकार कर ली। धीरे-धीरे माताजीके स्वास्थ्यमें सुधार होने लगा और कुछ दिनों बाद वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। आज भगवान्की

कृपासे मेरी माताजी पूर्णत: स्वस्थ हैं। आज भी भगवान्का ध्यान आते ही मन श्रद्धासे भरकर उनके चरणोंमें झुक गक्पात्यज्ञेन्त्रम्छिन्द्रके हेर्ने इसिन्द्रको संग्रङ्गे से उत्पादक के शिक्ष के स्वाप्त के स्वाप्त के स्वाप्त के स्व

पढो, समझो और करो संख्या ५ ] पढ़ो, समझो और करो (१) यथावत् रखे थे। मैंने प्रसन्नतापूर्वक कृतज्ञ हृदयसे उन मुझे भी वही परमात्मा दे देगा सज्जनका आभार व्यक्त करते हुए उसमेंसे दो हजार यद्यपि कराल कलिकाल और उपभोगवादी संस्कृतिके रुपये उन्हें देने चाहे तो उन सज्जनने कहा-भाई प्रभावसे जीवन-मूल्य, नैतिकता, ईमानदारी, सच्चरित्रता, साहब! यह पर्स मुझे नहीं मिला, यह सामनेवाली ईश्वर-विश्वास आदि सद्गुणोंका समाजमें तेजीसे ह्रास दुकानपर काम करनेवाले पल्लेदारको मिला था, उसने होता जा रहा है; पर जीवनमें कभी-कभी ऐसी भी मुझे लाकर दिया और कहा कि साहब! इसमें रुपयोंके घटनाएँ घट जाती हैं, जिनसे जिन्दगीमें एक मुसकान आ अलावा जरूरी कागज भी रखे हैं, जिसका हो, किसी जाती है और यह कहना पड़ता है कि 'नहीं, इन दैवी प्रकार उसतक खबर कर दीजिये, मैं इसमें लिखा पढ़ गुणोंका अभी धरतीसे लोप नहीं हुआ है,' यद्यपि ऐसी भी नहीं पाऊँगा। घटनाएँ '**जनु मरुभूमि देवधुनि धारा**'की भाँति अल्प मैंने सामनेकी दुकानसे उस पल्लेदारको बुलवाया ही होती हैं। ऐसी ही एक घटना गत वर्ष मेरे भी साथ और धन्यवाद देते हुए उसे दो हजार रुपये यह कहकर घटी थी। हुआ यह कि मैं किसी कार्यसे रायबरेली शहर देने लगा कि यह तुम रख लो, यह तुम्हारी ईमानदारीका गया था, घर वापस लौटनेपर देखा कि जेबमें पर्स तो ईनाम है। उसने कहा—साहब! आपका सामान आपको है ही नहीं। अब मेरे तो होश उड़ गये। चिन्ताका विषय मिल गया, यही मेरे लिये सबसे बड़ा ईनाम है, मुझे यह था कि उस पर्समें बाइस हजार नकद रुपयोंके साथ-पैसोंकी जरूरत नहीं है। मैंने पुनः उससे आग्रह किया कि भाई! मेरे संतोषके लिये ही ले लीजिये। इसपर उसने साथ दो बैंकोंके ए०टी०एम० कार्ड, पैन कार्ड, आधार कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस तथा अन्य जरूरी कागजात भी कहा—साहब! इतने रुपये आपको कौन देता है? मैंने थे। इनका दुरुपयोग भी हो सकता था। पर्स कहाँ गिरा कहा-परमात्मा देता है। इसपर उसने कहा-तो फिर होगा-इसी उधेड्बुनमें मैं परेशान था। मेरी परेशानीकी वही परमात्मा मुझे भी दे देगा। यह स्थिति लगभग दो घण्टेतक बनी रही। मैं उसके इस उत्तरसे अवाक् रह गया कि यह व्यक्ति इतनी आर्थिक विपन्नताकी स्थितिमें भी सद्गुणों अचानक दो घण्टे बाद एक फोन आया। मेरेद्वारा और मानवीय मूल्योंसे कितना सम्पन्न है। उसने आगे काल-रिसीव करनेपर उधरसे आवाज आयी, 'क्या आप माधवेश सिंह बोल रहे हैं ?' मैंने कहा—हाँ, भाई! बोल कहा—साहब! रही बात आपके संतोषकी, तो जब आप रहा हूँ। उधरसे पूछा गया, 'क्या आपका कुछ खो गया परमात्मासे अपने लिये प्रार्थना करना तो मेरे लिये भी इतनी प्रार्थना कर लेना कि मेरी भुजाओंमें बल और है ?' मैंने कहा कि लगभग दो घण्टे पहले मैं घण्टाघरकी ओर गया था, उधर ही कहीं मेरा पर्स गिर गया, फिर सीनेमें ईमानदारी बनी रहे। - माधवेश सिंह मैंने पर्समें रखी सामग्रीके विषयमें बताया। मैंने फोन (२) करनेवालेका परिचय जानना चाहा तो उसने कहा कि 'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम्' में यहाँ खोवामण्डीमें एक साइकिल स्टोरपर बैठा हूँ, [ आँखों देखी घटना ] आप आ जाइये; आपका पर्स मिल जायगा। आजसे प्राय: पचीस साल पहलेकी बात है। तब मैं बताये हुए स्थानपर पहुँचा तो वे फोन करनेवाले मैं अपने घरसे प्राय: पचास कि॰मी॰ दुर स्थित सज्जन मुझे पर्स लिये मिले। उन्होंने कहा कि आप हावाजान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयमें अध्यापन करता

था। एक कमरा किरायेपर लेकर वहीं रहता था। घरके

मालिक कार्की महोदय भी इसी विद्यालयके शिक्षक थे।

अपना यह पर्स देख लीजिये कि इसमें सारा सामान है

या नहीं। मैंने देखा तो उसमें रुपयोंसहित सारे कागजात

भाग ९० एक दिन शनिवारको जब मैं विद्यालयसे कमरेको वापस कथन पूर्णतया सत्य प्रतीत हुआ कि जिसकी रखवाली आया और घर आनेकी बात सोच रहा था कि कार्की ऊपरवाला करना चाहता है, उसे कोई नहीं मार सकता। सरके बडे भाई लोकनाथ कार्की, जो अध्यापन ही करते बकरीके नन्हे-से बच्चेको ट्रेनकी टक्करसे ऊपरवालेकी थे, ने मेरे पास आकर हँसते-हँसते थोडा-सा मजाक कृपाने ही बचाया था। - उदयनारायण गौतम करते हुए कहा—'मास्टरजी! ठण्डका मौसम है। ठण्डे (3) पानीमें हाथ डुबाते हुए खाना बनाना कठिन काम है ना? एक नयी सुबह एक दिन ही क्यों न हो, आराम तो कीजिये। आज हमारे जीवनमें कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित चिलये शिमलुगुडी जायँ। आपको अपने बड़े भाईसे न होती हैं, जो दु:खदायी होते हुए भी हमारी अन्तरात्माकी मिले शायद बहुत दिन हुए, मिल सकेंगे।' मैंने भी तुरन्त चेतनाको जाग्रत्कर हमारे जीवनकी धाराको बदल देती मान लिया कि बात सही है। तैयार होकर हम दोनों हैं। ऐसा ही एक सच्चा वृत्तान्त मुझे मेरे मित्रने बताया, साइकिलसे शिमलुगुडीको चले। शिमलुगुडी पन्द्रह कि॰मी॰ जो उसके जवानीके दिनोंमें घटित हुआ था, जिसने मुझे दूरीपर था। बीचमें रेललाइनका क्रॉसिंग पड़ता था। रेल-चिन्तनके लिये मजबूर कर दिया। लाइन पार होकर सड़कके किनारेपर स्थित एक पानकी उसने बताया कि यह बात आजसे लगभग तीस वर्ष दूकानपर पान खानेकी इच्छा हुई। दोनों रुके, उसी वक्त पुरानी है, मैं एक कम्पनीमें उच्च पदपर कार्यरत था और ट्रेन गुवाहाटीसे रंगापाड़ा जंक्शन होकर लक्षिमपुर शहरकी अपनी पत्नी एवं पुत्रके साथ सुखमय जीवन बिता रहा ओर आती हुई दिखायी पड़ी। मैं ट्रेनको देखनेके लिये था। एक दिन मेरा एक मित्र कार्यालयसे निकलनेके बाद उत्सुक हुआ। उत्सुक इसलिये हुआ कि ट्रेनमें दूर-दूरके मेरे ना करनेपर भी मुझे एक बारमें ले गया। वहाँपर लोग पैसेंजर-रूपी नरनारायणका दर्शन घर बैठे ही कर सकूँ। नृत्यके साथ-साथ मदिरापान भी कर रहे थे। वहाँपर अकस्मात् नजर सामने रेल लाइनपर पड़ी। देखा कि बारबालाएँ अपने नृत्य एवं भाव-भंगिमाओंसे आगंतुकोंका कुछ दूरीपर एक बकरी सद्योजात अपने दो बच्चोंके मन मोह रही थीं। इन्हींमेंसे एक बाला मेरे समीप आकर साथमें लाइनके बीच इधर-से-उधर कर रही है, ट्रेन बैठ गयी। उसके आकर्षक व्यक्तित्व एवं मीठी वाणीने जिधरसे आ रही थी, उधर ही सिर करके। मन चाहता मुझे सहज ही अपनी ओर खींच लिया। अब मैं प्रतिदिन था कि उन सबको लाइनसे बाहर कर दूँ, पर ट्रेन इतने उससे मिलनेके लिये बारमें जाने लगा और रुपये भी लुटाने लगा। इसका नतीजा हुआ, घरमें धनकी कमीसे आपसी-नजदीक आ पहुँची थी कि इतना समय था नहीं। आखिर हम दोनों 'राम राम' कहने लगे। शनै:-शनै: कलह। एक दिन पत्नीको सारी बातोंके पता चलनेपर वह बकरी और एक बच्चेको लाइनसे बाहर आते देखकर मुझे छोड़कर, पुत्रके साथ मायके चली गयी। अब मैं और भी ज्यादा स्वच्छन्द हो गया था और अच्छा लगा, पर दूसरा बच्चा तो तीव्रगतिशील निकटवर्ती ट्रेनकी ओर सिर उठाकर देखने लगा। ट्रेन आयी और दिन-रात शराबके नशेमें डूबकर बारमें समय बिताने उसने बच्चेको धक्का मार दिया। बच्चा करीब पन्द्रह लगा, एक दिन धनके अभावके कारण उस बालाके द्वारा फीटकी दूरीपर जा गिरा किनारेपर। हम आँखें बन्द चाहे गये उपहारको मैं नहीं दे पाया तो उसने अपना असली रूप दिखाते हुए मुझसे कहा—'अब तुम यहाँपर करनेके सिवाय और कर ही क्या सकते थे। ट्रेनके चले जानेपर हम वहाँ पहुँचे। देखा कि वह सकुशल जमीनपर आने और मेरेसे बात करनेके काबिल नहीं रहे, यहाँपर खडा है, कहीं चोटतक नहीं। हमने उसे उसकी माँके सम्मान उसीका होता है, जो धनवान होता है, धनविहीन पास पहुँचा दिया। वह माँका दूध पीने लगा। हमें एवं भिखारियोंके लिये यहाँ कोई जगह नहीं है। तुम आश्चर्य हुआ और 'अरिक्षतं तिष्ठति दैवरिक्षतम्' यह क्या थे, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है, तुम आज क्या

पढो, समझो और करो संख्या ५ ] हो मैं इसीको महत्त्व देती हूँ, अब तुम मेरे पाससे रफा-(8) दफा हो जाओ और आगेसे यहाँ आने या मुझसे पिताके पुण्यसे पुत्रको जीवनदान पूज्य स्व० श्रीसुधाकर पाण्डेयजीके बड़े पुत्र मिलनेकी जुर्रत कभी मत करना'। इन शब्दोंको सुनकर मुझे गहरा आघात लगा और अत्यन्त आन्तरिक वेदनाके श्रीपद्मनाभम्के पैरमें एक दिन अकस्मात् बड़ी तेजीसे साथ में वहाँसे बाहर चला आया। झुनझुनाहट होने लगी, आजमगढ़के डॉक्टरको दिखाया में मनमें ग्लानिवश आत्महत्याके विषयमें सोचने लगा. गया, उनकी सलाहपर सिटीस्कैन कराया, जिससे पता मेरी पत्नी तो मेरे क्रिया-कलापोंके कारण मुझसे विमुख चला कि सिरमें १७ मि०मी० नस फट गयी है और खून हो चुकी थी और जिससे प्रेम करता था, उसके इस स्वरूपको जम गया है। तदनन्तर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसके देखकर मैं भौचक्का था। मैं मनमें सोच रहा था कि एक न्यूरोरोग-विशेषज्ञको २४ जून सन् २०१४ ई० को दिखाया मेरी पत्नी जो कि सौम्य, सीधी-सादी एवं मेरे प्रति समर्पित गया, डॉक्टर साहबने कहा—'विगत कई वर्षींसे प्रतिदिन थी, उसने कभी भी मुझे भोजन कराये बिना अन्न ग्रहण मैं हजारों मरीज देखता हूँ, पर १७ मि॰मी॰ नस फट गयी नहीं किया, मैं जो भी धन उसे देता था, उससे वह घरका है और मरीज होशमें सामान्य दशामें है, यह बड़ा चमत्कार खर्च सुचारु रूपसे चलाती थी। उसने अपने लिये किसी है, यह दैवी कृपा है या इनके पूर्वजोंके पुण्यका प्रभाव है।' पाण्डेयके पूर्वज मध्य प्रदेशके वैकुण्ठपुरमें रियासतके प्रकारकी माँग नहीं की। वह हमेशा ईमानदारी, सत्यता एवं कार्यके प्रति पूर्ण समर्पण एवं लगनकी अपेक्षा रखती राजपण्डित थे। पूज्य स्व० पं० सुधाकरजी अपने थी। उसकी मैंने सदा उपेक्षा की, उसका अपमान किया। पिताजीकी तरह धार्मिक प्रवृत्तिके रहे। इन्होंने सन् मेरे जीवनको धिक्कार है। यह सब समझते हुए मेरा मन १९६८ से १९९९ ई० तक प्राथमिक विद्यालय शिक्षा ग्लानि एवं पश्चात्तापसे भर गया। क्षेत्र मिर्जापुर, आजमगढ्में आदर्श अध्यापककी तरह मैंने निश्चय किया कि मुझे अपनी पत्नीके पास जाकर कार्य किया। ये कल्याणके बड़े प्रेमी थे। ग्रीष्मावकाशमें अपने कृत्योंके लिये माफी माँगनी चाहिये, जिससे मेरे सत्संगहेतु स्वर्गाश्रम, हरिद्वार जाया करते थे। लगभग मनको शान्ति प्राप्त हो सके। मैंने अपनी पत्नीसे हृदयसे २० वर्षोंसे हरे राम महामन्त्रका जप करके जपसंख्या अपनी गलतियोंके लिये माफी माँगी और निवेदन किया कल्याणमें भेजते थे। अनुमान है कि इन्होंने १० से १५ कि वह मुझे माफ कर दे और मुझे एक मौका जीवनमें करोड़ नामजप किये होंगे। सुधरनेका दे दे। मेरे बहुत अनुनय-विनयके बाद मेरी साध्वी नवम्बर, सन् २०११ ई० को इनकी हल्की तबीयत पत्नी यह सोचकर कि जीवनमें गलती किससे नहीं होती, खराब हुई तो बड़े पुत्र श्रीपद्मनाभम् इन्हें सदर अस्पताल आजमगढ़ ले गये। पाण्डेयजीने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! उसने माफ कर दिया और मेरे साथ वापस अपने घर आ गयी। गृहलक्ष्मीके घर आते ही मानो मुझमें नयी ऊर्जाका क्यों परेशान होते हो, मेरी औषधि गंगाजल और तुलसी-संचार हो गया और प्रभुकृपासे मैं एक बड़ी कम्पनीमें पुन: दल है। मेरे वैद्य श्रीरामजी मेरे सामने खड़े हैं। अस्पताल कार्यरत हो गया। मैं अब जीवनका हर कदम सँभल-पहुँचकर कोई दवा होनेसे पहले सामान्य अवस्थामें वे सँभलकर रखने लगा। कुछ समय बाद प्रभुकृपासे धीरे-पांचभौतिक शरीर छोड़कर भगवान् श्रीरामके धाम सहर्ष धीरे कठिन परिश्रम एवं सकारात्मक सोचसे पुन: सुखमय चले गये। इस कलियुगमें ऐसे संतके चरणोंमें कोटिश: जीवन जीने लगा। प्रेषक—राजेश माहेश्वरी वन्दन। प्रेषक—हरिवंश सिंह

मनन करने योग्य 'दयाल दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं' महात्मा शिवरामिकंकरके सम्बन्धमें पढा था कि लेकर फौरन आ जाओ। सभी घरवालोंको लेकर तुम्हें काशी एक बार डाकिया तारका मनीआर्डर लेकर उनके पास जाना है। वहीं विवाह होगा। कन्यादान तुम्हें ही करना है!' पहुँचा। तारमें लिखा था कि 'भगवान् शिवने स्वप्नमें मुझसे कहा है कि अमुक स्थानपर मेरा भक्त शिवरामिकंकर छुट्टीके लिये बड़ी दौड़-धूप की। अफसरोंने इनकार कर दिया। पर जिसकी अर्जी मालिकके दरबारमें तीन दिनसे भूखा है! उन्हींके लिये मैं तारसे यह रुपया भेज रहा हूँ। इस नामके कोई सज्जन हों तो उन्हें मंजूर हो गयी, उसकी अर्जी यहाँपर मंजूर हुए बिना कैसे खोजकर उनके चरणोंमें यह तुच्छ भेंट पहुँचा दी जाय!' रह सकती है। 'जरा देरको सोचिये कि आपकी बेटीकी शादी हो कहते हैं कि एक बार शिवाजी महाराजके मनमें तो क्या आप ऐसे मौकेपर रुक जायँगे?'—बाल-यह भाव आ गया कि मैं इतने व्यक्तियोंको खिलाता हूँ। बच्चेदार अफसर पिघल ही तो गया म .....के मुँहसे यह अचानक उनके गुरुदेवने वहाँ प्रकट हो एक भारी दलील सुनकर! पत्थर तुड्वाया। देखा, उसके भीतर थोड़ी-सी तरीके बीचमें एक मेढक बैठा है। विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया। लडका स्वस्थ, शिवाजी लाजसे कटकर रह गये। जब उन्होंने सुशील, पढ़ता भी है, कुछ पैदा भी करता है। पूछा—'इस मेढकको भोजन कौन भेजता है?' दो हजार फलदानमें लगा और एक हजार अन्य सब फुटकर खर्चींमें! श्री म ''' 'आकाशवाणी' में काम करते हैं। विवाहकी आयुवाली एक बहनकी चिन्ता उन्हें ही पर, यह तीन हजार रुपया आ कहाँसे टपका? नहीं, सभी घरवालोंको खाये जा रही है। जमीन है, पर उसपर कई हजारका कर्ज लदा है। श्री म .....से एक सज्जनका मुकदमा चल रहा है। नौकरीसे अपनी गुजर किसी कदर चल जाय, पानीके प्रश्नको लेकर फौजदारी हो चुकी है....। उनके बेटेने एक दिन उनसे कहा—'बाबू, म .....के इतना ही बहुत! पिताके आपपर बडे उपकार हैं। उन्होंने आपके प्राणोंकी पारसाल बहनकी शादी एक जगह तय हो गयी। भी रक्षा की है। उनसे और आपसे बडी दोस्ती थी। समयसे टीकेके लिये रकम एकत्र न हो सकी और उनकी बेटीकी शादी पैसेके अभावमें रुकी रहे, यह तो वह सम्बन्ध ट्रट गया! ठीक नहीं। यह तो इज्जतका सवाल है। पिताके मित्र होनेके नाते आपकी इज्जतका भी सवाल है। पानीका पैसेकी दुनियामें बिना पैसेवालोंको पूछता ही कौन है। गरीबोंकी बेबसीपर किसे तरस आता है। दहेजकी कौडी-झगडा अपनी जगह है, उसे तो इसमें बाधक नहीं बनना कौड़ीको दाँतसे पकड़नेवाले लोगोंके हृदयमें दया कहाँ। चाहिये। इस मौकेपर तो आपको म .....की मदद करनी ही चाहिये! ....। दीनबन्धु बिन दीनकी को 'रहीम' सुधि लेय। बेटेके मुँहसे भगवान् बोले। अभी-अभी उस दिन श्री म .... को तार मिला-पिताने खटसे तीन हजार रुपये निकालकर दे दिये! Hinduism Discord Server https://dse.gg/elharma | MADE WITH LOVE BY मिर्शिक्स मिरिक्स मिर्शिक्स मिर्शिक्स

	गीताप्रेससे प्रकाशित व	गाल	_ <b></b>	दिला प्रदें और प्रदातें			
कोड	L	91(°1	कोड		मू० ₹		
ब	ालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ		164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा	२०		
1690	<b>बालकके गुण</b> ग्रन्थाकार	३५	165	मानवताका पुजारी	२०		
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	२५	166	परोपकार और सच्चाईका फल	२०		
1692	बालकको दिनचर्या "	२५	510	असीम नीचता और असीम साधुता	२०		
1693	बालकोंकी सीख "	२५		——— रोचक कहानियाँ ————			
1694	बालकके आचरण "	२५	1669	पौराणिक कहानियाँ	१५		
1691	बालकोंकी बातें पुस्तकाकार	१५	1624	पौराणिक कथाएँ	१५		
1437	वीर बालक "	२०	1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	२५		
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक "	१५	1093	आदर्श कहानियाँ	१५		
1450	सच्चे और ईमानदार बालक "	१५	137	उपयोगी कहानियाँ	१५		
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ ''	१५	147	चोखी कहानियाँ	१०		
1448	वीर बालिकाएँ "	१५	122	एक लोटा पानी	२०		
	- सत्य घटनाओंपर आधारित कहानियाँ -		1308	प्रेरक कहानियाँ	१०		
159	आदर्श उपकार	२०	680	उपदेशप्रद कहानियाँ	१५		
160	कलेजेके अक्षर	२०	1688	तीस रोचक कथाएँ	१५		
161	हृदयकी आदर्श विशालता	२०	1782	प्रेरणाप्रद कथाएँ	२०		
162	उपकारका बदला	२०	283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०		
163	आदर्श मानव हृदय	२०	1938	गीता माहात्म्यकी कहानियाँ	१०		
'र्गा	ताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूव	गनें	इन र	टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सक	न्ते हैं		
इन्दौर- जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग ऋषिकेश- कटक- भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी कानपुर- कोयम्बटूर- कोलकाता- गोतिष्म मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स कोलकाता- गोतिष्म पो० गीताप्रेस जलभाँव- दलली- दलली- वलनी- वलनी- वणम्म संक्र नागपुर- अशोक कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड पटना- अशोक कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड पटना- अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने वंगलोर - गीताप्म पा० भीताप्म पोठ पटना- अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने वंगलोर - गीताप्म पा० गीताप्म पोठ तल्का राजप्म पाठ गीताप्म रहीट पटना- अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने वंगलोर - गीताप्म पा० गीताप्म पा॰ पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); र (नं० 1); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); र (नं० 2-3); मुजफ्फरपुर (नं० 1); सीवान (नं०				ती (प्लेटफार्म नं० 5-6); नयी दिल्ली (नं० 16); ह मुद्दीन [दिल्ली] (नं० 4-5); कोटा [राजस् 1); बीकानेर (नं० 1); गोरखपुर (नं० 1); ग 1); कानपुर (नं० 1); लखनऊ [एन० ई० रेत गसी (नं० 4-5); मुगलसराय (नं० 3-4); ह 1); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); राँची (नं० 1); धन् 2-3); मुजफ्फरपुर (नं० 1); समस्तीपुर (नं० (नं० 1); सीवान (नं० 1); हावड़ा (नं० 5 तक्ता र); कोलकाता (नं० 1); सियालदा मेन (नं० नसोल (नं० 5); कटक (नं० 1); भुवनेश्वर (नं० दाबाद (नं० 2-3); राजकोट (नं० 1); जामनगर (नं० पुर (नं० 6); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० 1); सिकन्द पुर (नं० 1); विजयवाड़ा (नं० 6); गुवाहाटी (नं० पुर (नं० 1-2); रायपुर [छत्तीसगढ़] (नं० 1); बें 1); यशवन्तपुर (नं० 6); हुबली (नं० 1-2) नाईं प्रशान्ति निलयम् [दक्षिण–मध्य रेलवे] (नं०	थान] गेण्डा लवे]; रिद्वार नबाद 2); था 18 2 8); 2 1); राबाद 10 1); राबाद 10 1); राजाद 10 1);		
<b>फुटकर पुस्तक-दूकानें — चूरू</b> -ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, <b>ऋषिकेश</b> -मुनिकी रेती; <b>बेरहामपुर</b> -म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, के० एन० रोड, <b>नडियाड</b> (गुजरात) संतराम मन्दिर।							

फुटक मार्केट

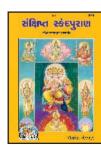
<mark>उपर्युक्त सभी गीताप्रेस गोरखपु</mark>रकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर 'कल्याण'का शुल्क जमा कराके रसी<mark>द प्राप्त की जा सकती है</mark>



प्र० ति० २१-४-२०१६ रिज0 समाचारपत्र—रिज0नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

## LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



यह पुराण कलेवरकी दृष्टिसे सबसे बड़ा है तथा इसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञानके अनन्त उपदेश भरे हैं। इसमें धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान तथा भक्तिके सुन्दर विवेचनके साथ अनेकों साधु-माहात्माओंके सुन्दर चिरत्र पिरोये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चिरत्र, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय जन्म, तारकासुर-वध आदिका मनोहर वर्णन है। मूल्य ₹३५०

नवीन प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य—संक्षिप्त स्कन्दपराण (कोड 2036) गुजराती—

## पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तक अब उपलब्ध

पातञ्जलयोग-प्रदीप (कोड 47)—श्रद्धेय श्रीओमानन्द महाराजद्वारा प्रणीत इस ग्रन्थमें पातञ्जलयोग-

सूत्रोंकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी, भोजवृत्ति तथा योगवार्तिकके अनुसार विस्तृत रूपसे की गयी है। इसमें उपनिषदों तथा भारतीय दर्शनोंके विभिन्न तत्त्वोंकी सुन्दर समालोचना है। इसकी व्याख्या सरल तथा सुगम

है। यह योग-दर्शनके जिज्ञासुओंके लिये नित्य पठनीय है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹१७० कूर्मपुराण-सानुवाद (कोड 1131)—इस पुराणमें भगवान्के कूर्मावतारकी कथा, सृष्टि-वर्णन, वर्ण, आश्रम और उनके कर्त्तव्योंका वर्णन, यग धर्म, मोक्षके साधन, २८ व्यासोंकी कथाएँ आदि विविध

है। भूमिकारूपमें षड्दर्शन समन्वय तथा तत्त्वविश्लेषण प्रणालीसे यह ग्रन्थ और भी उपयोगी हो गया

विषयोंका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹१४० **मत्स्यमहापुराण-सानुवाद (कोड** 557)—इस पुराणमें मत्स्यावतारकी कथाके साथ सृष्टि वर्णन,

मत्स्यमहापुराण-सानुवाद (कांड 557)—इस पुराणम मत्स्यावतारका कथाक साथ सृष्टि वणन, मन्वन्तर तथा पितृवंशवर्णन, ययाति-चरित्र, राजनीति, यात्राकाल, शकुन-शास्त्र आदि अनेक उपयोगी विषयोंका संग्रह है। मूल्य ₹२७०

उपनिषद्-अङ्क (कोड 659)—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों-(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर-) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासिहत संकलन है। इसके अतिरिक्त इसमें ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणी तथा प्राय: सभी उपनिषदोंका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मूल्य ₹२००

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण केवल भाषानुवाद (कोड 77)—सचित्र, मूल्य ₹२८०

महाभारत (सटीक) (कोड 32)—प्रथम खण्ड, आदिपर्वसे सभापर्वतक सचित्र, मूल्य ₹३२५ (कोड 33) द्वितीय खण्ड, (कोड 36) पंचम खण्ड प्रकाशनकी प्रक्रियामें (कोड 34, 35, 37) की सीमित प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

श्रीरामचरितमानस, बृहदाकार [ केवल मूल पाठ ] ( कोड 1436 )—इसमें पाठ-विधिके साथ नवाह और मास परायणके विश्रामस्थान दी गयी है। मृल्य ₹२५०

खुल गया है—गोंदिया (महाराष्ट्र) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।